CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

16.1

2774

श्री जैन सिद्धान्त
प्रश्नोत्तर माला
द्वितीय भाग

-।-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्थान

र माला

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्री सेठी दिगम्बर जैन ग्रन्थमाला पुष्प नं० २

२७७८

श्री जैन सिद्धान्त प्रश्नोत्तर माला

द्वितीय भाग

... वर्णी दि. जैन (शोध) संस्थान

अनुवादकः—

मगनलाल जैन

❀

प्रकाशकः—

श्री सेठी दि० जैन ग्रन्थमाला

अंतर्गत—मीठालाल महेन्द्रकुमार सेठी दि० जैन पारमार्थिक ट्रस्ट

६२. धनजी स्ट्रीट, बम्बई. ३

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रथम संस्करण वीर नि० सं० २४८३

प्रति १०००

द्वितीय भाग मूल्य ।।-)

मुद्रक : नेमीचन्द बाकलीवाल

कमल प्रिंटर्स, मदनगंज (किशनगढ़)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रस्तावना

इस पुस्तकमें मुख्य उपयोगी प्रश्न और उनके अनुशीलन में जो जो नये उपयोगी प्रश्न उद्भूत हुए उन सब का उत्तर सहित समावेश किया गया है तथा उन प्रश्नोंका प्रकरणानुसार वर्ग बना के माला रूप गूँथ कर "श्री जैन सिद्धान्त प्रश्नोत्तरमाला" के नामसे आज मुमुक्षुओं के हाथ में देते हुए हर्ष हो रहा है।

इस माला में प्राथमिक अभ्यासियों को-मुख्यतः तत्त्व के जिज्ञासुओं को अध्ययनके लिये जो जो विषय अत्युपयोगी हों वे सभी -द्रव्य-गुण-पर्याय, द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, उत्पाद-व्यय- ध्रौव्य, द्रव्य के सामान्य विशेष गुण, चार अभाव, यहाँ तक प्रश्नोत्तर तो प्रथम भाग में दिया गया है बाद इस दूसरे भाग में-पांचवें प्रकरण में कर्ता-कर्मादि छह कारक, छठवें प्रकरण में उपादान-निमित्त तथा नि० नैमित्तिक, निश्चय-व्यवहार, फिर सातवें प्रकरण में सात तत्त्व, तथा उसमें भूल, देव, शास्त्र, गुरु का स्वरूप, धर्म का स्वरूप, वगैरह शास्त्राधार से लिया गया है।

तीसरे भाग वाली पुस्तक के आठवें प्रकरण में लक्षण, प्रमाण, नय-निक्षेप, जैन शास्त्रों में पाँच प्रकार से अर्थ करने की रीति, और नयाभासों का वर्णन है।

प्रकरण नव में अनेकान्त और स्याद्वाद अधिकार है,

दसवें प्रकरण में मोक्षमार्ग अधिकार है जिसमें पुरुषार्थ, स्वभाव काललब्धि, नियति, कर्म वे पाँच समवाय और मोक्षमार्गके

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विषय में अनेक प्रयोजनभूत बातों की स्पष्टता की है जो अवश्य समझने योग्य है। बाद में परिशिष्ट नं० १-२ पढ़ने योग्य हैं इस पुस्तक में अध्याय ५ से ७ तक दिया है तीसरा भाग भी छप चुका है जिसमें अध्याय ८ से १० तक पूर्ण वर्णन आयेगा।

(१) निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध आदिः—

निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध वास्तव में व्यवहारनय का विषय है इसलिये उसका अर्थ करने में मुख्य ध्यान रखने की आवश्यकता है, क्योंकि निमित्तकारण वह सच्चा कारण नहीं है; मात्र वह आरोपित कारण है। प्रति समय प्रत्येक द्रव्य में अनादि से अनंतकाल तक पर्यायें होती ही रहती हैं, और पर्याय वह कार्य है। कार्य तो वास्तव में उपादान सदृश होता है, किन्तु उस समय जिस पदार्थ पर कारण न होने पर भी कारणपने का आरोप आता है उसे निमित्त कहते हैं; उस निमित्त सम्बन्धी ज्ञान करना आवश्यक है; किन्तु निमित्त के कारण नैमित्तिक में कुछ कार्य होता है ऐसा मानना वह निमित्त को निमित्त न मानकर वास्तव में उपादान मानने के बराबर होता है; व्यवहार कारण व्यवहाररूप न रहकर निश्चय कारण हो जाता है। जीव अनादि से व्यवहार को निश्चय मानता आ रहा है, इसलिये शास्त्राभ्यास करते हुए भी यदि जीव व्यवहारको निश्चयरूप मानने का अर्थ करे तो उसकी अनादि-कालीन भूल दूर नहीं होती।

निमित्त के बिना कार्य नहीं होता-ऐसा कथन भी व्यवहार का है, अर्थात् ऐसा नहीं है; किन्तु प्रत्येक कार्य के समय उचित

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

निमित्त उपस्थित होता है—ऐसा बतलाने के लिये वह कथन आता है; तथापि यदि उपादान को निमित्त की आवश्यकता पड़ती है, या उसकी प्रतीक्षा करना पड़ती है अथवा सहायता की आवश्यकता होती है, या उसका प्रभाव पड़ता है, अथवा निमित्त के बिना उपादान में सचमुच कार्य नहीं होता–ऐसा माना जाये तो यह सिद्ध होगा कि पर के बिना स्व में कार्य नहीं होता। किन्तु प्रत्येक द्रव्य का कार्य अपने–अपने छह कारकों से स्वतंत्ररूप से होता है; इसलिये ऐसा निर्णय होता है कि कार्य होते समय निमित्त की उपस्थिति होती है इतना ज्ञान कराने के लिये उसे दर्शाया होता है। निमित्त से कार्य हुआ—ऐसे कथन जैन शास्त्रों में आते हैं उन्हें भी व्यवहार नयका कथन समझना। वहाँ ऐसा अर्थ करना चाहिये कि निमित्त से नैमित्तिक कार्य नहीं हुआ है, किन्तु नैमित्तिक में स्वतंत्ररूप से कार्य हुआ उस समय निमित्त कौन था—यह बतलाने के लिये वह कथन किया है।

कोई ऐसा मानता है कि—निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध जीव की पर्याय और कर्म के बीच ही होता है; अन्य किसी के बीच नहीं होता; किन्तु वह बात बराबर नहीं है। दूसरों के बीच भी निमित्त–नैमित्तिक सम्बन्ध होता है। मात्र जब जब कारण बतलाना हों तब–तब उपादान कारण और निमित्तकारण–ऐसा कहा जाता है, और दो पदार्थों के बीच के कारण–कार्य बतलाना हों तब निमित्त कारण और नैमित्तिक कार्य—ऐसा कहा जाता है; तथा एक ही द्रव्य में उसका कारण–कार्य बतलाना हो तो उपादानकारण और उपादेय

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कार्य कहा जाता है। इस सम्बन्धी स्पष्टीकरण इस पुस्तक के प्रश्नोत्तर ३६३ (पृष्ठ ३७–३८) में किया गया है।

कुछ लोगों की ऐसी मान्यता है कि कर्मोदय के अनुसार जीव को Degree to Degree विकार करना ही पड़ता है।–ऐसी मान्यता दो द्रव्यों की एकत्व बुद्धि में से उत्पन्न होती है। कर्म का जीव में सर्वथा अभाव है, वह जीवके लिये अद्रव्य, अक्षेत्र, अकाल, अभाव है। इसलिये जीव वास्तव में अपने कारण विकार करता है तब निमित्त कौनसा कर्म है वह बतलाने के लिये शास्त्र में कर्म के उदय से जीव में विकार होता है—ऐसा कहा जाता है। इस सम्बंधी स्पष्टीकरण प्रश्नोत्तर ३७१ तथा ३९६ में किया गया है। सारांश यह है कि–निमित्त, व्यवहार और परद्रव्य–इन सबका ज्ञान करने की आवश्यकता है; क्योंकि उस ज्ञान के बिना यथार्थ ज्ञान नहीं होता। फिर भी उनमें से किसी के आश्रय से कदापि धर्म नहीं होता और वह धर्म का कारण भी नहीं होता—ऐसा अचूक निर्णय करना चाहिये।

श्री अमृतचन्द्राचार्य देव रचित पुरुषार्थ सिद्ध्युपाय ग्रन्थ के २२५ वें श्लोक का जो अर्थ है वह उपयोगी होने से उसका यहाँ अवतरण देते हैं।

(२) जैनी नीति अथवा नय विवक्षा:—

एकेनाकर्षन्ती श्लथयन्ती वस्तुतत्त्वमितरेण।
अन्तेन जयति जैनीनीतिर्मन्थाननेत्रमिव गोपी ॥२२५॥

अर्थ:—मथनी की रस्सी खींचने वाली गोवालिन की भाँति,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जिनेन्द्र भगवानकी जो नीति अर्थात नय विवक्षा है वह वस्तु स्वरूप को एक नय विवक्षा से खींचती और दूसरी नय विवक्षा से ढील देती हुई अंत अर्थात् दोनों विवक्षाओं द्वारा जयवंत रहे।

भावार्थः—भगवान की वाणी स्याद्‌वादरूप अनेकान्तात्मक है; वस्तु का स्वरूप प्रधानतया गौण नय की विवक्षा से किया जाता है। जैसे कि—जीव द्रव्य नित्य भी है और अनित्य भी है; द्रव्यार्थिक नय की विवक्षा से नित्य है और पर्यायार्थिक नय की विवक्षा से अनित्य है। यह नय विवक्षा है।

[देखिये, जिनवाणी प्रचार कार्यालय कलकत्ता द्वारा प्रकाशित—"पुरुषार्थ सिद्‌ध्युपाय," पृष्ठ १२३]

यह श्लोक ऐसा बतलाता है कि—शास्त्र में किसी स्थान पर निश्चयनय की मुख्यता से कथन है और कहीं व्यवहारनयकी मुख्यता से; किन्तु उसका अर्थ यह नहीं है कि सच्चा धर्म किसी समय व्यवहारनय (अभूतार्थनय) के आश्रय से होता है और कभी निश्चयनय (भूतार्थनय) के आश्रय से होता है; धर्म तो सदैव निश्चयनय अर्थात भूतार्थनय के विषय के आश्रय से ही होता है।

ऐसा न्याय उसी शास्त्र के पाँचवें श्लोक में तथा श्री **कार्तिकेयानुप्रेक्षा** ग्रन्थ को गाथा ३११–३१२ के भावार्थ में दिया है; इसलिये इस श्लोक का दूसरा कोई अर्थ करना योग्य नहीं है।

इस प्रस्तावना में मुख्य–मुख्य विषयों सम्बन्धी योग्य मार्गदर्शन स्पष्टता पूर्वक संक्षेप में किया गया है। इतना दर्शाने के पश्चात नम्र अनुरोध है कि–मात्र यह प्रश्नोत्तर माला को पढ़ लेने से तत्त्वका

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यथार्थ ज्ञान नहीं हो सकता, इसलिये उसका यथार्थ ज्ञान करने के लिये तत्त्व जिज्ञासा पूर्वक ज्ञानियोंका प्रत्यक्ष उपदेश सुनना चाहिये। जिज्ञासुओं को सत्पुरुष श्री कानजी स्वामी के आध्यात्मिक व्याख्यानों का अवश्य लाभ लेना चाहिये। जो अपनी आत्मा के लिये विशेष लाभ का कारण होगा।

जैन सिद्धान्त प्रश्नोत्तर माला तीसरा भाग छपकर तैयार हो गया है वह भी अवश्य पढ़ कर सच्चा आत्म हित का लाभ लेना चाहिये।

वीर सं० २४८३
सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

रामजी माणेकचन्द दोशी
प्रमुख
श्री जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

પૂજ્ય અધ્યાત્મયોગીશ્રી કાનજીસ્વામી
સોનગઢ—સૌરાષ્ટ્ર.

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्पण

परम कृपालु पूज्य
आत्मार्थी सत्पुरुष श्री कानजी स्वामी के
कर कमल में

जिनके उत्कृष्ट अमृतमय उपदेश को प्राप्त कर इस पामर ने अपने अज्ञान अंधकार को दूर करने का यथार्थ मार्ग प्राप्त किया है ऐसे महान महान उपकारी सत् धर्म प्रवर्तक पूज्य श्री कानजी स्वामी के कर कमलों में तीर्थराज श्री सम्मेद शिखरजी की पुनीत यात्रा के अवसर पर, अत्यन्त आदर एवं भक्ति पूर्वक यह पुस्तिका अर्पण करता हूँ और भावना करता हूँ कि आपके बताये मार्ग पर निश्चलरूप से चल कर निःश्रेयस अवस्था को प्राप्त करूँ।

विनम्र सेवक
महेन्द्रकुमार सेठी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मुख्य विषय

प्रकरण	पृष्ठ
१—कर्ता कर्मादि छह कारक अधिकार	१
२—उपादान निमित्त तथा निमित्त नैमित्तिक अधिकार	३२
३—सात तत्त्व–नव पदार्थ अधिकार	६६

इन प्रकरणों के गौण विषयों की अनुक्रमणिका तथा आधारभूत ग्रन्थों की सूची आगे दी गई है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

निवेदन

जब कि मैं सावन मास सं० २०१३ में प्रौढ़ शिक्षणवर्ग में अभ्यास करने के लिये सोनगढ़ गया था और वर्ग में अभ्यास करता था उस समय अभ्यासियों को पूछे जाने वाले प्रश्नों को जिसप्रकार सुन्दर रीति से समझाया जाता था वह प्रश्नोत्तार की शैली समझ कर मेरे हृदय में यह भाव जागृत हुआ कि अगर ये प्रश्नोत्तार भले प्रकार से संकलन करके स्कूल एवं पाठशालाओं में जैन धर्म की शिक्षा लेने वाले शिक्षार्थियों को सुलभ कर दिये जायें तो सत् धर्म की भले प्रकार से प्रभावना हो और बहुत लोगों को लाभ मिल सके। यह भाव जागृत हुए थे कि मालुम हुआ श्रद्धेय वयोवृद्ध श्री रामजी भाई माणकचन्दजी दोशी संपादक आत्मधर्म एवं प्रमुख श्री जैन स्वा० मंदिर ने बहुत प्रयास करके लघु जैन सिद्धान्त प्रवेशिका के प्रश्नों पर सर्वांग सुन्दर पुस्तिका गुजराती में तैयार की है और वह छपने भी प्रेस में चली गई है, यह जानकर मुझे बहुत हर्ष हुआ और मैंने उसको हिन्दी अनुवाद करने के लिये भेज दिया। इसी समय मेरा यह भाव जागृत हुआ कि एक ग्रंथमाला चालू की जावे जिसका नाम सेठी दि० जैन ग्रंथमाला हो तथा वह भले प्रकार से आगामी भी चलती रहे। उसके लिये मैंने मेरे पूज्य श्री पिताजी की आज्ञानुसार एक ट्रस्ट बनाने का निर्णय किया जिसका नाम श्री मीठालाल महेन्द्रकुमार सेठी दि० जैन परमार्थिक ट्रस्ट रखा। उसी ट्रस्ट के अंतर्गत यह सेठी दि० जैन ग्रंथमाला चालू की है जिसके कि पहले पुष्प के रूपमें इस जैन सिद्धान्त प्रश्नोत्तर माला का प्रथम भाग प्रकाशित हुआ है, अभी इस प्रश्नोत्तर माला का द्वितीयभाग आपके हाथमें है;

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तथा इसका तृतीयभाग भी शीघ्र ही प्रकाशित हो रहा है जो जल्दी ही पाठकों के हाथ में पहुँच जावेगा।

इसके प्रथमभाग में द्रव्य, गुण, पर्याय तथा अभाव इन चार विषयों से सम्बन्धित अनेक प्रकार के प्रश्न उठाकर उनके आगम न्याय युक्ति एवं स्वानुभव सहित बहुत ही सुन्दर एवं विस्तृत उत्तर दिये हैं—

इस भाग में छह कारक, निमित्त उपादान तथा सात तत्त्व और नव पदार्थों का बहुत सुंदर प्रश्नोत्तार रूप में विवेचन है तथा तीसरे भागमें प्रमाण नय निक्षेप, अनेकान्त और स्याद्वाद तथा मोक्षमार्ग के ऊपर बहुत विशद विवेचन है। इसप्रकार इस ग्रंथ की उपयोगिता तो इसके प्रथम व द्वितीयभाग पढ़ने से आपको ज्ञात हो ही जावेगी। इतनी बड़ी विशद पुस्तक को ३ भाग में छपाने का मेरा खास उद्देश्य यही है कि जैन समाज की शिक्षण संस्थाऐं इन पुस्तकों को धर्म की शिक्षा के लिये कक्षाओं में काम ले सकें तथा अलग अलग विषयों पर मनन करने के लिये अभ्यासियों को अलग अलग पुस्तक रखने में सुगमता हो।

अतः मेरी अभिलाषा सफल हुई तो अपना प्रयास सफल समझूंगा। इस कार्य के पूरा करने में भाई श्री नेमीचन्दजी पाटनी किशनगढ़वाले, भाई श्री हरिलालजी जीवराजजी भायाणी भावनगर वालों ने एवं ब्रह्मचारी भाई श्री गुलाबचन्दजी ने बहुत मेहनत की है उसके लिये मैं उनका अत्यन्त आभारी हूँ।

निवेदक
महेन्द्रकुमार सेठी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

परमपूज्य श्री कानजी स्वामी के आध्यात्मिक वचनों का अपूर्व लाभ लेने के लिये निम्नोक्त पुस्तकों का—

अवश्य स्वाध्याय करें

मूलमें भूल	।।।)
श्री मुक्तिमार्ग	।।=)
श्री अनुभवप्रकाश	।।)
श्री पंचमेरु आदि पूजासंग्रह	।।।)
समयसार प्रवचन भाग २	५।)
समयसार प्रवचन भाग ३	४।।)
प्रवचनसार	५)
अष्टपाहुड़	६)
चिद्विलास	१=)
आत्मावलोकन	१)
मोक्षमार्ग प्रकाशककी किरण प्र०	१=)
द्वितीय भाग	२)
जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तरमाला प्र०	।।-)
द्वितीय भाग	।।-)
जैन बालपोथी	।)
सम्यग्दर्शन	१।।=)
द्वादशानुप्रेक्षा (स्वामि कार्ति-केयानुप्रेक्षा)	२)
जैन तीर्थ पूजा पाठ संग्रह कपड़े की जिल्द	१।=)
भेदविज्ञानसार	२)
अध्यात्म पाठसंग्रह	५)
समयसार पद्यानुवाद	।)
निमित्तनैमित्तिक संबंध क्या है ?	=)।।
स्तोत्रत्रयी	।।)
लघु जैन सिद्धांत प्रवेशिका	≡)
आत्मधर्म-मासिक लवाजम—	३)
आत्मधर्म फाइल वर्ष १—२—३—५—६—७—८—१०	३।।।)

हिन्दी आत्मधर्म की फाइलें

वर्ष १, २, ३, ५, ६, ७, ८, १० यह आठ फाइलें एक साथ लेने वालों को ३०—०—० के बदले २०—०—० में दी जायेंगी।

[डाकव्यय अतिरिक्त]

मिलने का पता—
श्री जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शुद्धि-पत्र

पत्र नं०	ला०	अशुद्धि	शुद्धि
३	५	असत्स	असत्य
१२	२३	प्रदेशां	प्रदेशों
२४	६	कर	करम
२८	१५	क पना	कल्पना
३३	१	उ पत्ति	उत्पत्ति
४१	१०	नुणस्थान	गुणस्थान
४७	१२	प्ररक	प्रेरक
६५	७	नारकी	नारक
६७	४	जाये	माना जाये
६८	४	भवितव्व	भवितव्य
७१	२	मुनिलिग	मुनिलिंग
७४	२०	सम्बन्ध ही	सम्बन्ध
८१	१८	माने	न माने
८३	१६	गति मानादि	गतिमानादि
८५	१४	द्रव्यमें	द्रव्य
८६	१०	ज्यति	ज्योति
”	१८	४३२	४३४
६२	२१	बात	वाल
६७	१	तत्व	तत्त्व
६८	६	विभाग	विभाव
१०१	२५	स्वरूप	(स्वरूप)
१०१	१४	संथान	संस्थान

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रश्न-सूची

प्रश्न	प्रश्नांक
(अ)	
अंतरंग कारण से ही कार्य न मानने में दोष	४०१
अधिकरण कारक	३५२
अन्वयकारण	४२३
अपादान कारक	३५१
अभावरूपनिमित्त	३९५
असमर्थ कारण	४२०
एकद्रव्यका कार्य दूसरोंके द्वारा माननेमें कितने कारकोंकी भूल ?	३६०
(आ)	
आत्मा काहे का कर्त्ता है ?	३६६
आत्मा अपनी योग्यता से ही राग करता है; तो आत्मा को रागादि स्वभाव हो जायेगा	३७२
आत्माको कभी कर्म का जोर है ?	३७३
आत्मा केवलज्ञान प्राप्त करता है उसमें छहों कारक	३६१
(इ)	
इन्द्रियों के विषय सुख दुःख दाता हैं ?	३७४
(उ)	
उत्पादन कारण	४१७
उत्पादक सामग्री के भेद	३८१
उदासीन निमित्त	३८७
उपादान कारण	३८२

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उपादान उपादेय ३९३
उपकार ४२५
उपादान कारण से ही कार्य मानने में क्या दोष ? ४०१
उपादान निमित्त कारणों के दूसरे क्या नाम हैं ? ४१५
उपादान निमित्त की चर्चा में पर, निमित्त, व्यवहार हेय है और ध्रुव उपादान के आश्रय से ही धर्म होता है, उसके शास्त्राधार ४३२

(ए)

एक जीव दूसरे का घात करता है ? ३६९
एक द्रव्य के या द्रव्यकी पर्याय के दो कर्त्ता ? ३६५
एक समय में कितने कारक ? ३५७

(क)

क्या कर्म के उदय अनुसार जीव विकार करता है ? ३७१
कर्ता ३४७
कर्म ३४८
कर्मोदयानुसार जीव को रागादि हैं ? ३७१–३९६
कर्मका तीव्र उदय हो तब जीव पुरुषार्थ कर सकता है ? ३९७
कर्मकी बलजबरी ४०९
कार्य किसके समान होता है ? ४२६
कार्य कैसे होता है ? ३७९, ३९८, ४२६
कार्य में निमित्तका कार्य क्षेत्र कितना ? ३९८
करण (–कारण) ३४९
कारक ३५३
कारण में निश्चय व्यवहार ३५४ से ३५७
कारकों सम्बन्धी चर्चा ३५९ से ३६४

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कारण–साक्षात्–परम्परा ४२८
कारण ३८०
किसी समय जड़ कर्म का जोर है? ३७३
कोई ऐसा जानता है कि पुद्गल निमित्तकर्त्ता होकर
परिणमित होता है ३७८

(घ)

घड़ारूप कार्य में क्षणिक उपादान और त्रिकाली उपादान, उदा-
सीन और प्रेरक ३८८

(छ)

छह कारक द्रव्य–गुण–पर्याय में से क्या है ? ३५८

(ज)

जड़ कर्म जीवको नरकमें ले जाते हैं ? ४१४
जड़ कर्म जीवको राग कराता है ? ३७७
जोवको विभाव होनेमें स्फटिकका दृष्टान्त ऊपरसे कई लोगोंकी
विपरीत समझ ४३०
जीव को उपकार दूसरे कर सकते हैं ? ४२५
जीव और पुद्गल के विकारी भावोंके सम्बन्धमें परस्पर कर्ता
कर्मपना है ? ३६४-६७

(ज्ञ)

ज्ञानी दूसरोंका भला करने को उपदेश देते हैं ? ३७६

(न)

निमित्तकारण ३८४, ४३१
निमित्त कारण के भेद ३८५, ४१६
निमित्त प्रेरक–उदासीन, ३८६, ८७, ९४, ९५

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

निमित्त के अनेक प्रकार भावरूप–अभावरूप ३९५
निमित्त–नैमित्तिक सम्बन्ध किसे कहते हैं ? ३९३
निमित्त–नैमित्तिक सम्बन्ध कब कहलाता है ? ४०४
निमित्त नैमित्तिक सम्बंन्ध जीव और द्रव्य कर्मके बीच ही होता है या उपादान–निमित्त कारणरूप भी उनमें होता है ? ४२७
निमित्त–नैमित्तिक सम्बन्ध के दृष्टान्त ४०५
निमित्त के बल से, प्रेरणा से दूसरे का कार्य होता है ? ३७५
निमित्त जो प्रेरक हो वह उपादान में कोई प्रभाव, प्रेरणा, असर करता है ? ३८९
निमित्त अंकिंचित्कर ३९९–४००
निमित्त वास्तव में अकिन्चित्कर क्यों है ? ४०३
निमित्त–उपादान संवाद; "वनारसी विलास" से अर्थ सहित ४०६–७
निमित्त उपादान को कुछ नहीं कर सकता, तो सूई से दु:ख क्यों होता है ? ४१२
निमित्त विना कार्य होता है? ४०८–४१०
निमित्त पाकर कार्य होता है ? ४१३
निमित्त–नैमित्तिक सम्बन्ध द्रव्यकर्म के साथ ही है ? ४२७
निमित्त–उपादान के प्रश्नों में क्या सिद्धान्त है ? ४३३–३४
निमित्त बिना ?? ४११
निश्चयकारक ३५५

(प)

परिणमन में (कार्य में) उपादान निमित्त दोनों होते हैं उनमें निमित्त कारण का कार्यक्षेत्र कितना ? ३९८
पुद्‌गल जीव को रागादिरूप परिणमित करता है ? ३७७

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पुद्‌गल निमित्त कर्ता होता है ? ३७८
प्रत्येक द्रव्यका अपनी योग्यतानुसार ही परिणमन ४०२
प्रेरक निमित्त ३८६, ९०, ९१, ९२
प्रेरक निमित्त के आधीन परिणमन करना पडता है ? ३९०

(ब)

बलाधान निमित्त ४३१

(भ)

भावरूप निमित्त ३९५

(म)

मुख्य और उपचार कारण ४३२

(य)

योग्यता ३८३–४०२
योग्यता शब्द का आधार पृ० ४५ से ४८

(र)

रोग से दुःख, उसके अभाव से सुख बराबर है ? ३७०

(व)

वस्तु का प्रत्येक परिणमन अपनी योग्यता से ४०२
विकारी भाव को जीव स्वतंत्ररूप से करता है ? ३६७
विकार भाव (रागादि) अहेतुक–सहेतुक ? ३६८
विकर जीव से माने तो स्वभाव हो जायेगा, इसलिये रागादि कर्मकृत हैं ? ३७२
व्याप्य व्यापक बिना कर्ता कर्म हो ? ३६२
व्याप्य व्यापक ३६३

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(स)

समर्थकारण ४१६
सम्यग्दृष्टि के शुभ भाव परम्परा से धर्म का कारण है ? ४२६
सम्यग्दृष्टि नरक में क्यों जाता है ४१४
सम्प्रदान ३५०
संहार ४१८
सहकारी कारण ४२२–२४
साक्षात् कारण–परम्परा कारण ४२८
साधकतम कारण ४२१
संज्ञी पंचेन्द्रियपना आदि निमित्त बिना मोक्षमार्ग प्रगट होता है ? ४१०

प्रकरण सातवाँ

(यहां पत्र संख्या समझना)

प्रश्न पृष्ठ

(अ, आ, उ)

अर्हन्त भगवान् के ४६ गुण ११०
" " किन १८ दोषों से रहित हैं ११४
अज्ञानी को आस्रवतत्त्व में कैसी श्रद्धा है ? १०६
" " जीवाजीवतत्त्वका श्रद्धान क्यों अयथार्थ है १०५
अजीव तत्त्व सम्बन्धी भूल १०३
आचार्य के ३६ गुण १११
आचार्य, उपाध्याय तथा साधु का सामान्य स्वरूप १०९

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आस्रवादि सात तत्त्व सम्बन्ध में भूल १०२–५
उपादेय तत्त्व १०१
उपाध्याय के २५ गुण ११३

(त)

तत्त्व का अर्थ ९६
तत्त्व कितने ? और ९६
उनका स्वरूप क्या है ९७
तत्त्वों के विषय में चर्चा ९९–१०१
जैन धर्म ११५
देव–गुरु–धर्म का स्वरूप १०७–१०
बारह प्रकार के तप ११२
मुनि के २८ मूल गुण ११३
सात तत्त्वों की यथार्थ श्रद्धा में देव–गुरु–धर्म की श्रद्धा १०७
सच्चे शास्त्र (आगम) का क्या स्वरूप है ? ११४
सर्वज्ञ का लक्षण ११४

★

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

❀ आधारभूत ग्रन्थों की सूची ❀

श्री जैन सिद्धान्त प्रवेशिका
श्री लघु जैन सिद्धान्त प्रवेशिका
श्री परमार्थ वचनिका
श्री जैन सिद्धान्त दर्पण
श्री प्रवचनसार गुजराती तथा हिन्दी
श्री मोक्षमार्गप्रकाशक गुजराती, हिंदी
श्री बृहद् द्रव्य संग्रह
श्री मोक्षशास्त्र गुजराती
श्री गोम्मटसार जीवकांड कर्मकांड
श्री पंचाध्यायी (हिंदी) पं. फूलचंदजी
श्री पंचाध्यायी गुज. पूर्वार्द्ध-उत्तरार्द्ध
श्री आत्मधर्म (गुजराती) अंक १२०
श्री चिद् विलास
श्री समयसार गुजराती
श्री समाधि शतक
श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा
श्री आत्मावलोकन
श्री द्यानतराय कृत जयमाल
श्री सर्वार्थ सिद्धि
श्री तत्त्वार्थ राजवार्तिक टीका
श्री अर्थ प्रकाशिका
श्री श्रुतसागरी टीका
श्री तत्त्वार्थ सूत्र अंग्रेजी
श्री बृहत स्वयंभू स्तोत्र
श्री आलाप पद्धति
श्री मोक्षशास्त्र पं० पन्नालालजी कृत
श्री तत्त्वार्थसार
श्री नियमसार गुजराती
श्री चर्चा समाधान
श्री समवशरण पाठ
श्री पंचास्तिकाय
श्री बनारसी विलास
श्री विद्वज्जन बोधक
श्री जिनेन्द्र स्तुति
श्री अष्ट पाहुड़
श्री महाधवला पु० १३ वीं
श्री धवला पु० ७ वीं
श्री अनुभव प्रकाश
श्री समयसार नाटक पं० बनारसीदासजी कृत
श्री छहढाला पं० दौलतरामजी कृत
श्री परमात्म प्रकाश
श्री तत्त्वार्थ सूत्र पं० फूलचन्दजी कृत
श्री अष्ट सहस्री
श्री ज्ञान दर्पण
श्री न्याय दीपिका
श्री इष्टोपदेश
श्री अष्टशती
श्री प्रमेयकमल मार्तण्ड
श्री आप्तमीमांसा
श्री तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक टीका
श्री परीक्षा मुख
श्री आत्मानुशासन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रकरण पाँचवाँ

कर्ता-कर्मादि छह कारक अधिकार

प्रश्न (३४७)—कर्ता किसे कहते हैं ?

उत्तर—जो स्वतंत्रता से (स्वाधीनता पूर्वक) अपने परिणाम को करे वह कर्ता है।

[प्रत्येक द्रव्य अपने में स्वतंत्र व्यापक होने से अपने ही परिणाम का स्वतंत्ररूप से कर्ता है]

प्रश्न (३४८)—कर्म (कार्य) किसे कहते हैं ?

उत्तर—कर्ता जिस परिणाम को प्राप्त करता है वह परिणाम उसका कर्म है।

प्रश्न (३४९)—करण किसे कहते हैं ?

उत्तर—उस परिणाम के साधकतम अर्थात् उत्कृष्ट साधन को करण कहते हैं।

प्रश्न (३५०)—सम्प्रदान किसे कहते हैं ?

उत्तर—कर्म (परिणाम—कार्य) कर्म जिसे दिया जाय अथवा जिसके लिये किया जाय उसे सम्प्रदान कहते हैं।

प्रश्न (३५१)—अपादान किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिसमें से कर्म किया जाय उस ध्रुव वस्तु को अपादान कहते हैं।

प्रश्न (३५२)—अधिकरण किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिसमें अथवा जिसके आधार से कर्म (कार्य) किया जाय उसे अधिकरण कहते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

[सर्व द्रव्यों की प्रत्येक पर्याय में यह छह कारक एक साथ वर्तते हैं, इसलिये आत्मा और पुद्गल शुद्ध दशा में या अशुद्ध दशा में स्वयं छहों कारकरूप परिणमन करते हैं और दूसरे कारकों की (निमित्त कारणों की) अपेक्षा नहीं रखते ।]

—(देखो, पंचास्तिकाय गा० ६२ संस्कृत टीका)

".....निश्चय से परके साथ आत्मा का कारकपने का संबंध नहीं है, कि जिससे शुद्धात्मस्वभाव की प्राप्तिके लिये सामग्री (बाह्य साधन) खोजने की व्यग्रता से जीव (व्यर्थ ही) परतंत्र होते हैं।"

—(प्रवचनसार गाथा १६ टीका)

प्रश्न (३५३)–कारक कितने प्रकार के हैं ?

उत्तर—"यह छह कारक व्यवहार और निश्चय–ऐसे दो प्रकार के हैं। जहाँ पर के निमित्तसे कार्य की सिद्धि कही जाये वहाँ व्यवहार–कारक हैं, और जहाँ अपने ही उपादान कारण से कार्य की सिद्धि कही जाये वहाँ निश्चय–कारक हैं।"

—(प्रवचनसार गाथा १६ भावार्थ)

प्रश्न (३५४)–व्यवहार–कारक दृष्टान्त देकर समझाइये।

उत्तर—"कुम्हार **कर्ता** है; घड़ा **कर्म** है; दंड; चक्र; डोरी आदि **करण** हैं; जल भरने वाले के लिये कुम्हार घड़ा बनाता है इसलिये जल भरनेवाला **सम्प्रदान** है; टोकरे में से मिट्टी लेकर घड़ा बनाता है इसलिये टोकरा **अपादान** है धरती के आधार से घड़ा बनाता है इसलिये धरती **अधिकरण** है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इसमें सभी कारक भिन्न–भिन्न हैं। अन्य कर्ता है, अन्य कर्म है, अन्य करण है, अन्य सम्प्रदान है, अन्य अपादान और अन्य अधिकरण है।

"परमार्थतः कोई द्रव्य किसी का कर्ता–हर्ता नहीं हो सकता; इसलिये यह व्यवहार छह कारक असत्य हैं; वे मात्र उपचरित असद्भूत व्यवहारनय से कहे जाते हैं। **निश्चय से किसी द्रव्यको अन्य द्रव्य के साथ कारकपने का सम्बन्ध है ही नहीं।"**

—(श्री प्रवचनसार गाथा १६ भावार्थ)

प्रश्न (३५५)–निश्चय कारक दृष्टान्त देकर समझाइये।

उत्तर—"मिट्टी स्वतंत्ररूप से घड़ारूप कार्य को पहुँचती है–प्राप्त करती है इसलिये मिट्टी कर्ता और घड़ा कर्म है; अथवा घड़ा मिट्टी अभिन्न होने के कारण मिट्टी स्वयं ही कर्म है; अपने परिणमनस्वभाव द्वारा मिट्टीने घड़ा बनाया इसलिये मिट्टी स्वयं ही करण है; मिट्टीने घड़ारूप कर्म अपने को ही दिया इसलिये वह स्वयं ही सम्प्रदान है। मिट्टीने अपने में से ही पिन्डरूप अवस्था नष्ट करके घड़ारूप कर्म किया और स्वयं ध्रुव रही, इसलिये स्वयं ही अपादान है; मिट्टी ने अपने ही आधार से घड़ा बनाया इसलिये स्वयं ही अधिकरण है।

इसप्रकार **निश्चय से छहों कारक एक ही द्रव्य में हैं।** परमार्थतः एक द्रव्य दूसरे को सहायक नहीं हो सकता इसलिये और द्रव्य स्वयं ही अपने को, अपने द्वारा, अपने लिये, अपने में

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

से, अपने में करता है इसलिये **यह निश्चय छह कारक ही परम सत्य हैं।**

उपरोक्त रीतिसे द्रव्य स्वयं ही अपनी अनंत शक्तिरूप सम्पदासे परिपूर्ण होने के कारण स्वयं ही छह कारक रूप होकर अपना कार्य उत्पन्न करने में समर्थ है; **उसे बाह्य सामग्री कोई सहायता नहीं कर सकती....''**

—(श्री प्रवचनसार गाथा १६ भावार्थ)

प्रश्न (३५६)–आत्मा प्रज्ञा द्वारा भेदज्ञान करती है उसमें कौन से कारक हैं ?

उत्तर—आत्मा कर्ता; प्रज्ञा करण; भेदज्ञान कर्म,–इस प्रकार तीन कारक हैं।

प्रश्न (३५७)–एक समय में कितने कारक होते हैं ?

उत्तर—प्रतिसमय छहों कारक होते हैं।

प्रश्न (३५८)–यह छह कारक क्या हैं ? द्रव्य हैं; गुण हैं या पर्याय ?

उत्तर—यह छह कारक द्रव्यमें रहने वाले सामान्य और अनुजीवी गुण हैं। प्रतिसमय उनकी छह पर्यायें नई–नई होती रहती हैं। (कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपदान और अधिकरण ये छह)

प्रश्न (३५९)–आत्मामें से ही आत्मा द्वारा ही शुद्धता प्रगट होती है; उसमें कितने कारक हैं ?

उत्तर—आत्मामें से अपादान; आत्मा द्वारा करण; और शुद्धता प्रगट होती है वह कर्म है;–इस प्रकार तीन कारक हैं।

प्रश्न (३६०)–एक द्रव्यका पर्यायरूपी कार्य वास्तवमें दूसरों के द्वारा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हो सकता है, दूसरों के आधार से हो सकता है—ऐसा मानने में कितने कारकों की भूल है ?

उत्तर—सभी कारकों की भूल है; क्योंकि एक कारक को जिसने स्वतंत्र न मानकर पराधीन माना उसने छहों कारक यथार्थ नहीं माने।

प्रश्न (३६१)—आत्मा केवलज्ञान प्राप्त करता है; उसमें छहों कारक किस; प्रकार लागू होते हैं ?

उत्तर—"………केवलज्ञान प्राप्त करने की इच्छा रखनेवाले **आत्मा को बाह्य सामग्री की अपेक्षा रखकर परतन्त्र होना निरर्थक है।** शुद्धोपयोग में लीन आत्मा स्वयं ही छह कारक रूप होकर केवलज्ञान प्राप्त करता है। वह आत्मा स्वयं ही अनंत शक्तिवान् ज्ञायकस्वभाव द्वारा स्वतंत्र होने से स्वयं ही कर्ता है; स्वयं अनंत शक्तिवान् केवलज्ञान को प्राप्त करता है इसलिये केवलज्ञान कर्म है, अथवा केवलज्ञान से स्वयं अभिन्न होने के कारण आत्मा स्वयं ही कर्म है; अपने अनंतशक्तिवान परिणमन स्वभावरूप उत्कृष्ट साधन द्वारा केवलज्ञान करता है इसलिये आत्मा स्वयं ही करण है; स्वयं को ही केवलज्ञान देता है इसलिये आत्मा स्वयं ही सम्प्रदान है; अपने में से मति—श्रुतादि अपूर्ण ज्ञान दूर करके केवलज्ञान करता है इसलिये और स्वयं ही सहज ज्ञानस्वभाव द्वारा ध्रुव रहता है इसलिये स्वयं ही अपादान है; अपने में ही अर्थात् अपने ही आधार से केवलज्ञान करता है इसलिये स्वयं ही अधिकरण है।—इसप्रकार स्वयं छह कारकरूप होने से वह "स्वयंभू" कहलाता है……"

(श्री प्रवचनसार गाथा १६ भावार्थ)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रश्न (३६२)—व्याप्यव्यापक भावके बिना कर्ता—कर्म की स्थिति हो-सकती है ?

उत्तर—नहीं; व्याप्यव्यापक भावके संभव बिना कर्ता—कर्म की स्थिति नहीं ही हो सकती।

व्याप्यव्यापकभावसंभवमृते का कर्तृकर्मस्थितिः ?

अर्थः—व्याप्यव्यापक भाव के संभव बिना कर्ता—कर्म की स्थिति कैसी ?

(श्री समयसार गाथा ७५ कलश ४९)

प्रश्न (३६३)—व्याप्यव्यापक भाव का क्या अर्थ ?

उत्तर—"जो सर्व अवस्थाओं में व्यापे वह तो **व्यापक** है और कोई एक अवस्था विशेष वह (उस व्यापक का) **व्याप्य** है; इस प्रकार द्रव्य तो व्यापक है और पर्याय व्याप्य है; द्रव्य—पर्याय अभेद रूप ही हैं... .ऐसा होने से द्रव्य पर्यायमें व्याप्त होता है और पर्याय द्रव्य द्वारा व्याप्त हो जाती है। ऐसा व्याप्यव्यापकपना तत्स्वरूप में ही (अभिन्न सत्तावान् पदार्थ में ही) होता है, अतत्स्वरूप में (जिनकी सत्ता—सत्त्व भिन्न—भिन्न है ऐसे पदार्थो में) नहीं ही होता।

जहाँ व्याप्यव्यापक भाव हो वहीं कर्ता—कर्म भाव होता है; व्याप्यव्यापक भावके बिना कर्ता—कर्म भाव नहीं होता। ऐसा जो जाने वह—पुद्गल और आत्मामें कर्ता—कर्म भाव नहीं है—ऐसा जानता है। ऐसा जानने से वह ज्ञानी होता है; कर्ता-कर्म भाव रहित होता है और ज्ञाता—दृष्टा—जगत का साक्षी-भूत—होता है।

(श्री समयसार कलश ४९ भावार्थ)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

व्याप्यव्यापक भाव या कर्ता–कर्म भाव एक ही पदार्थ में लागू होते हैं. भिन्न–भिन्न पदार्थों में वे लागू नहीं हो सकते।

वास्तव में कोई दूसरों का भला–बुरा कर सकता है, कर्म जीवको संसार में परिभ्रमण कराते हैं–इत्यादि मानना वह अज्ञान है।

निमित्त के बिना कार्य नहीं होता, निमित्त पाकर कार्य होता है–यह कथन व्यवहारनय के हैं। उन्हें निश्चयनय का कथन मानना भी अज्ञानता है।

प्रश्न (३६४)–जीवके विकारी परिणाम और पुद्गल के विकारी परिणाम (कर्म) को परस्पर कर्ताकर्मपना है ?

उत्तर—नहीं; क्योंकि—

(१) "जीव, कर्मके गुणों को नहीं करता, और कर्म जीवके गुणों को नहीं करता; परन्तु परस्पर निमित्तसे दोनों के परिणाम जानो। **इसकारण आत्मा अपने ही भावसे कर्ता है, परन्तु पुदगल कर्म द्वारा किये गये सर्व भावों का कर्ता नहीं है।"**

(श्री समयसार गाथा ८०–८१–८२)

(२) ".....जिस प्रकार मिट्टी द्वारा घड़ा किया जाता है उसी प्रकार अपने भाव द्वारा अपना भाव किया जाता है इसलिये, जीव अपने भावों का कर्ता कदाचित् है, किन्तु जिसप्रकार मिट्टी द्वारा वस्त्र नहीं किया जा सकता, उसी प्रकार अपने भाव द्वारा परभाव किया जाना अश-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

क्य होने से (जीव) पुद्गल भावों का कर्ता तो कदापि नहीं है यह निश्चय है।"

(श्री समयसार गाथा ८० से ८२ की टीका)

(३) "........संसार और निःसंसार अवस्थाओं को पुद्गलकर्म के विपाक का संभव और असंभव निमित्त होने पर भी पुद्गलकर्म और जीव को व्याप्यव्यापक भावको अभाव होने से कर्ताकर्मपने की असिद्धि होने से, जीव ही स्वयं अंतर्व्यापक होकर संसार अथवा निःसंसार अवस्था में आदि-मध्य-अंत में व्याप्त होकर **ससंसार अथवा निःसंसार ऐसे अपनेको करता हुआ अपने एक को ही करता हुआ प्रतिभासित हो परन्तु अन्य को करता हुआ प्रतिभा-सित न हो......"**

(श्री समयसार गाथा ८३ की टीका)

(४) "आत्मा अपने ही परिणाम को करता हुआ प्रतिभासित हो; पुद्गल के परिणामको करता तो कभी प्रतिभासित न हो। आत्मा और पुद्गल–दोनों की क्रिया एक आत्मा ही करता है–ऐसा मानने वाले मिथ्यादृष्टि हैं। जड़–चैतनकी एक क्रिया हो तो सर्व द्रव्य बदल जाने से सर्वका लोप हो जाये–यह महान दोष उत्पन्न होगा।"

(श्री समयसार गाथा ८६ का भावार्थ)

(५) "........इसलिये जीवके परिणाम को, अपने परिणाम को और अपने परिणाम के फलको न जाननेवाला ऐसा पुद्गल द्रव्य......परद्रव्य परिणामस्वरूप से कर्म को नही

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

करता इसलिये, उस पुद्गलद्रव्य को जीवके साथ कर्ताकर्म भाव नहीं है।"

(श्री समयसार गाथा ७९ टीका)

(६) "........कोई द्रव्य किसी अन्य द्रव्यका कर्ता है ही नहीं; किन्तु सर्व द्रव्य अपने-अपने स्वभावरूप परिणमित होते हैं। मात्र यह जीव व्यर्थ ही कषायभाव करके व्याकुल होता है। और कदाचित् अपनी इच्छानुसार ही पदार्थ परिणमित हो, तो भी वह अपने परिणमित करने से परिणमित नहीं हुआ है; किन्तु जिसप्रकार बालक चलती हुई गाड़ीको धकेलकर ऐसा मानता है कि "इस गाड़ी को मैं चला रहा हूँ"—इसी प्रकार वह असत्य मानता है।

(श्री मोक्षमार्ग प्रकाशक, अधिकार ४—पृष्ठ ९२)

इस पर से सिद्ध होता है कि—जीवके भावका परिणमन और पौद्गलिक कर्म का परिणमन एक—दूसरे से निरपेक्ष स्वतंत्र है; इसलिये जीव में रागादि भाव वास्तव में द्रव्यकर्म के उदय के कारण होते हैं; जीव सचमुच द्रव्यकर्मको करता है और उसका फल भोगता है—इत्यादि मान्यता वह विपरीत मान्यता है। जीव के रागादिभाव के कारण कर्म आये और कर्म का उदय आया इसलिये जीव में रागादिभाव हुआ—ऐसा है ही नहीं। जीवके भावकर्म और द्रव्यकर्म के बीच मात्र निमित्त—नैमित्तिक सम्बन्ध है, कर्ताकर्मभाव नहीं है, क्योंकि दोनों में अत्यंताभाव है।

प्रश्न (३६५)—एक द्रव्यके या द्रव्यकी पर्यायके दो कर्ता हो सकते हैं ?

उत्तर—नहीं; क्योंकि प्रत्येक द्रव्य का परिणमन स्वतंत्र है, वह किसी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

परद्रव्य या निमित्त की सहायताकी अपेक्षा नहीं रखता; वह स्वयं कार्यरूप परिणमित होता है।

(१)—"यः परिणमति स कर्ता यः परिणामो भवेत्तु तत्कर्म।
या परिणतिः क्रिया सा त्रयमपि भिन्नं न वस्तुतया ॥ ५१ ॥

अर्थः—जो परिणमित होता है वह कर्ता है; (परिणमित होने वाले का) जो परिणाम वह कर्म है, और जो परिणति है वह क्रिया है;—यह तीनों वस्तुरूप से भिन्न नहीं हैं।"

(कर्ता, कर्म और क्रिया—यह तीनों एक द्रव्यकी अभिन्न अवस्थाएँ हैं; प्रदेश भेदरूप भिन्न वस्तुएँ नहीं हैं।)

(श्री समयसार गाथा ८६, कलश ५१)

२—"एकः परिणमति सदा परिणामो जायते सदैकस्य।
एकस्य परिणतिः स्यादनेकमप्येकमेव यतः ॥ ५२ ॥

अर्थः—वस्तु एक ही सदैव परिणमित होती है, एक के ही सदैव परिणाम होते हैं (एक अवस्था से अन्य अवस्था एक की ही होती है) और एक की ही परिणति—क्रिया होती है; क्योंकि अनेक रूप होने पर भी एक ही वस्तु है, भेद नहीं है।"

(श्री समयसार कलश ५२)

(३)—"नोभौ परिणमतः खलु परिणामो नोभयोः प्रजायेत।
उभयोर्न परिणतिः स्याद्यदनेकमनेकमेव सदा ॥ ५३ ॥

अर्थः—दो द्रव्य एक होकर परिणमित नहीं होते, दो द्रव्यों का एक परिणमन नहीं होता और दो द्रव्यों की एक परिणति—क्रिया नहीं होती; क्योंकि अनेक द्रव्य हैं वे सदैव अनेक ही हैं (बदल कर एक नहीं हो जाते)"

(श्री समयसार—कलश ५३)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(४)—"नैकस्य हि कर्तारौ द्वौ स्तो द्वे कर्मणी न चैकस्य ।
नैकस्य च क्रिये द्वे एकमनेकं यतो न स्यात् ॥ ५४ ॥

अर्थः—एक द्रव्यके दो कर्ता नहीं होते, और एक द्रव्य के दो कर्म नहीं होते तथा एक द्रव्यकी दो क्रिया नहीं होती; क्योंकि एक द्रव्य अनेक द्रव्यरूप नहीं होता ।"

(श्री समयसार–कलश ५४)

इससे समझना चाहिये कि–जीव शरीरादि परकी क्रिया नहीं कर सकता; निमित्तसे सचमुच कार्य होता है–ऐसा मानना वह एक भ्रम है; क्योंकि एक कार्य के दो कर्ता नहीं हो सकते ।

प्रश्न (३६६)–आत्मा काहे का कर्ता है ?

उत्तर—आत्मा अपने परिणामों का ही–शुभ, अशुभ या शुद्ध भावों का ही कर्ता है; किन्तु ज्ञानावरणादि द्रव्य कर्म और शरीरादि नोकर्म का कभी कर्ता है ही नहीं । क्योंकि–

(१)—"अज्ञानं ज्ञानमप्येवं कुर्वन्नात्मानमंजसा ।
स्यात्कर्तात्मात्मभावस्य परभावस्य न क्वचित् ॥ ६१ ॥

अर्थः—इसप्रकार वास्तव में अपने को अज्ञानरूप या ज्ञानरूप करता हुआ आत्मा अपने ही भावों का कर्ता है; परभावों का (पुद्गल भावों का) कर्ता तो कभी है ही नहीं ।"

(श्री समयसार कलश ६१)

(२)—"आत्मा ज्ञानं स्वयं ज्ञानं ज्ञानादन्यत् करोति किम् ।
परभावस्य कर्तात्मा मोहोऽयं व्यवहारिणाम् ॥ ६२ ॥

अर्थः—आत्मा ज्ञानस्वरूप है, स्वयं ही ज्ञान है; वह ज्ञानके अतिरिक्त (जानने के अतिरिक्त) दूसरा क्या करेगा ? आत्मा परभाव का कर्ता है ऐसा मानना (तथा कहना) वह व्यवहारी जीवों का

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मोह (अज्ञान) है।"

(श्री समयसार—कलश ६२)

(३) "प्रथम तो आत्मा का परिणाम सचमुच स्वयं आत्मा ही है, क्योंकि परिणामी परिणाम के स्वरूपका कर्ता होने के कारण परिणाम से अनन्य है; और जो उसका (आत्मा का) तथाविध परिणाम है वह जीवमयी क्रिया ही है.......और जो (जीवमयी) क्रिया है वह आत्मा द्वारा स्वतंत्ररूप से प्राप्य होने से कर्म है, इसलिये परमार्थ से आत्मा अपने परिणाम स्वरूप ऐसे उस भावकर्म का ही कर्ता है; परन्तु पुद्गल परिणाम स्वरूप द्रव्यकर्म का नहीं।"

(श्री प्रवचनसार गा० १२२ की टीका)

(४) "व्यवहार से (लोग) मानते हैं कि जगतमें आत्मा घड़ा, वस्त्र, रथ इत्यादि वस्तुओं को, और इन्द्रियों को, अनेक प्रकार के क्रोधादि द्रव्यकर्मों को और शरीरादि नोकर्मों को करता है।" (श्री समयसार गाथा ९८); किन्तु ऐसा मानना वह व्यवहारी जीवों का व्यामोह (भ्रान्ति अज्ञान) है; क्योंकि—

"यदि निश्चय से यह आत्मा परद्रव्य स्वरूप कर्म को करे तो परिणाम-परिणामीपना अन्य किसीप्रकार नहीं बन सकता इसलिये वह (आत्मा) नियम से तन्मय (पर द्रव्यमय) हो जाये; परन्तु वह तन्मय तो नहीं है, क्योंकि कोई द्रव्य अन्य द्रव्यमय हो जाये तो उस द्रव्य के नाश की आपत्ति (दोष) आयेगा; इसलिये आत्मा व्याप्य व्यापक भाव से परद्रव्य स्वरूप कर्मका कर्ता नहीं है।"

(श्री समयसार—गाथा ९९ टीका)

"योग अर्थात् (मन-वचन-काय के निमित्त से) आत्मप्रदेशों का चलन और उपयोग अर्थात् ज्ञान का कषायों के साथ उपयुक्त होना-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जुड़ना। यह योग और उपयोग घटादिक तथा क्रोधादिक को निमित्त हैं इसलिये उन्हें तो घटादिक तथा क्रोधादिक का निमित्त कर्ता कहा जाता है, किन्तु आत्माको उनका कर्ता नहीं कहा जाता। आत्मा को संसारदशा में अज्ञान से मात्र योग–उपयोग का कर्ता कहा जा सकता है।

तात्पर्य यह है कि–"द्रव्यदृष्टि से तो कोई द्रव्य अन्य किसी द्रव्य का कर्ता नहीं है; परन्तु पर्यायदृष्टि से किसी द्रव्य की पर्याय किसी समय किसी अन्य द्रव्य की पर्याय को निमित्त होती है; इसलिये इस अपेक्षा से एक द्रव्य के परिणाम अन्य द्रव्य के परिणाम के निमित्त कर्ता कहलाते हैं। परमार्थतः द्रव्य अपने ही परिणामों का कर्ता है; अन्य के परिणामों का अन्य द्रव्य कर्ता नहीं है।"

—(श्री समयसार गाथा १०० का भावार्थ)

जो इस प्रकार आत्मा का स्वरूप समझता है उसे संयोग की पृथक्ता, विभावकी विपरीतता और स्वभाव के सामर्थ्य का भान होने से स्व-सन्मुखता प्राप्त होती है।

"जो पुरुष इसप्रकार "कर्ता, करण, कर्म और कर्मफल आत्मा ही है"—ऐसा निश्चय करके वास्तव में परद्रव्य रूप परिणमित नहीं होता, वही पुरुष–जिसका परद्रव्य के साथ सम्पर्क रुक गया है और जिसके पर्यायें द्रव्यके भीतर प्रलीन हो गई हैं ऐसे–शुद्ध आत्मा को उपलब्ध करता है; परन्तु अन्य कोई (पुरुष ऐसे शुद्ध आत्मा को उपलब्ध नहीं करता।"

(श्री प्रवचनसार गाथा १२६ टीका)

प्रश्न (३६७):–क्या जीव विकार स्वतंत्ररूप से करता है?

उत्तर—हाँ; क्यों कि:—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(१) "........पूर्वकाल में बँधे हुए द्रव्यकर्मों का निमित्त* जीव पाकर अपनी अशुद्ध चैतन्य शक्ति द्वारा रागादि भावों का (विकारका) कर्ता बनता है; तब (उसीसमय) पुद्गल द्रव्य रागादि भावोंका निमित्त पाकर अपनी शक्तिसे (**अपनेउपादानकारणसे**) अष्टकर्मरूप भाव को प्राप्त करता है।

"जिसप्रकार चन्द्र या सूर्य के प्रकाश का निमित्त पाकर संध्या के समय आकाशमें अनेक रंग, बादल, इन्द्र धनुष, मंडलादिक नाना प्रकार के पुद्गल स्कंध अन्य किसी कर्ता की अपेक्षा रखे बिना (**अपनी शक्ति से**) ही अनेक प्रकार परिणमित होते हैं, उसी प्रकार जीव द्रव्यके अशुद्ध चेतनात्मक भावों का निमित्त पाकर पुद्गल वर्गणाएँ अपनी ही शक्ति से ज्ञानावरणादि आठ प्रकार से कर्म दशारूप होकर परिणमित होती हैं।"

(श्री पंचास्तिकाय गाथा ६६ की हिन्दी टीका

(२) बंध प्रकरणवशात् अशुद्ध निश्चयनय से, जीवके रागादि विभाव परिणामों को भी (जीवका) स्वभाव कहा गया है। (देखो पंचास्तिकाय गाथा ६५ की श्री जयसेनाचार्यकृत संस्कृत टीका

(३) "यद्यपि निश्चयसे अपने निजरस से ही सर्ववस्तुओं का अपने स्वभावभूत ऐसे स्वरूप परिणमन में समर्थपना है, तथापि (आत्माको) अनादि से अन्य वस्तुभूत मोह के साथ संयुक्तपना होने से, आत्माके उपयोग का, मिथ्यादर्शन अज्ञान और अविरति

---

* उपादान से होनेवाला यह कार्य विकारी है, स्वभाव भाव नहीं किन्तु अवस्तुभाव है—ऐसा बतलाने के लिये तथा निमित्त का ज्ञान कराने लिये "निमित्त पाकर" (इस) शब्द का उपयोग किया जाता है। (—देखो आत्मावलोकन पृष्ठ—५५)।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

—ऐसा तीन प्रकार का परिणाम विकार है.....

(श्री समयसार गाथा ८९ की टीका)

(४) "आत्माके रागादि उत्पन्न होते हैं वे अपने ही अशुद्ध परिणाम हैं। निश्चयनयसे विचार किया जाये तो अन्य द्रव्य रागादिक का उत्पन्न करनेवाला नहीं है; अन्य द्रव्य उनका निमित्त मात्र है; क्योंकि अन्य द्रव्यके अन्य द्रव्य, गुण–पर्याय उत्पन्न नहीं करते ऐसा नियम है। जो ऐसा मानते हैं (ऐसा एकान्त करते हैं) कि–"पर द्रव्य ही मुझे रागादिक उत्पन्न कराते हैं;" वे नय विभाग को नहीं समझते हैं, वे मिथ्यादृष्टि हैं। यह रागादिक जीवके सत्त्व में उत्पन्न होते हैं, पर द्रव्य तो निमित्त मात्र है–ऐसा मानना वह सम्यग्ज्ञान है.....

(श्री समयसार गाथा ३७२ की टीका का भावार्थ)

(५) ".....परमार्थ से आत्मा अपने परिणामस्वरूप ऐसे उस भाव-कर्म का ही कर्ता है × × × परमार्थ से पुद्गल अपने परिणाम स्वरूप ऐसे उस द्रव्यकर्म का ही कर्ता है, परन्तु आत्मा के कर्म स्वरूप भावकर्म का नहीं।"

—(देखो, प्रवचनसार गा० १२२ की टीका)

(६) ".....जब तक स्व-परका भेदज्ञान न हो तब तक तो उसे रागादिक का–अपने चेतनरूप भाव कर्मों का–कर्ता मानो, और भेद विज्ञान होने के पश्चात् शुद्ध विज्ञान घन, समस्त कर्तापने के भाव से रहित एक ज्ञाता ही मानो–इसप्रकार एक ही आत्मा में कर्तापना तथा अकर्तापना–यह दोनों भाव विवक्षावश सिद्ध होते हैं। ऐसा स्याद्वाद मत जैनों का है.... ऐसा (स्याद्वाद अनुसार) मानने से पुरुष को संसार–मोक्ष आदि की सिद्धि होती

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है; सर्वथा एकान्त मानने से सर्व निश्चय–व्यवहार का लोप होता है।"

—(श्री समयसार कलश २०५ भावार्थ)

(७) "जीव यह विकार अपने दोष से करता है इसलिये वे स्वकृत हैं; किन्तु उन्हें स्वभाव दृष्टि के पुरुषार्थ द्वारा अपने में से दूर किया जा सकता है......अशुद्ध निश्चयनय से वह स्वकृत है और दूर किया जा सकता है इसलिये निश्चय से वह परकृत है.... किन्तु वे परकृतादि नहीं हो जाते, मात्र अपने में से दूर किये जा सकते हैं इतना ही वे दर्शाते हैं।"

(पंचाध्यायी गुजराती उत्तरार्द्ध गा० ७२ का भावार्थ)

"पंचाध्यायी उत्तरार्द्ध" में–इस विकारी भावको गाथा ७६ में "तद्गुणाकृति" कहा है; गाथा १०५ में "तद्गुणाकार संक्रान्ति" कहा है; गाथा १३० में "परगुणाकार स्वगुणच्युति" कहा है तथा गाथा२४२ में "स्वस्वरूपच्युत" कहा है। और उस पर्याय में अपना ही दोष है, अन्य किसीका उसमें किंचित् दोष व हस्तक्षेप नहीं है,–ऐसा बतलाने के लिये उसे गाथा ६० और ७६ में "जीव स्वयं अपराधवान् है"–ऐसा कहा है। इसलिये पर द्रव्य या कर्म का उदय जीव में विकार करता–कराता है ऐसा मानना मिथ्या है। जो निमित्त कारण है वह उपचरित कारण है किन्तु वास्तविक कारण नहीं है; इसलिये उसे गाथा ३५१ में "अहेतुवत्"–"अकारण समान" कहा है।

(पंचाध्यायी उत्तरार्द्ध–गुजराती अनुवाद गाथा ७२ का भावार्थ)

(८) विकार वह आत्म द्रव्यका त्रिकाली स्वभाव नहीं है, किन्तु क्षणिक योग्यतारूप पर्याय स्वभाव है; वह उदय भाव होने के

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कारण पर्याय अपेक्षा से जीवका स्वतत्त्व है।

"जड़ कर्म के साथ जीवका अनादि (निमित्त-नैमित्तिक) सम्बन्ध है और जीव उसके वश होता है इसलिये विकार होता है; किन्तु कर्म के कारण विकार भाव नहीं होता—ऐसा भी औदयिकभाव सिद्ध करता है।" (देखो मोक्षशास्त्र हिन्दीआवृत्ति पृष्ठ २११)

"कोई निमित्त विकार नहीं कराता, किन्तु जीव स्वयं निमित्ताधीन होकर विकार करता है। जीव जब पारिणामिक भावरूप अपने स्वभाव की ओर का लक्ष करके स्वाधीनता प्रगट करता है तब निमित्ताधीनपना दूर होकर शुद्धता प्रगट होती है-ऐसा औपशमिक भाव, साधकदशा का क्षायोपशमिकभाव और क्षायिकभाव—यह तीनों सिद्ध करते हैं।

(देखो, मोक्षशास्त्र हिन्दी आवृति अ० २, सूत्र १ की टीका—पृष्ठ २१२)

(९) बंधका संक्षिप्त स्वरूप ऐसा है कि:—

"रागपरिणाम ही आत्माका कार्य है, वही पुण्य पापरूप द्वैत है; राग परिणामका ही आत्मा कर्ता है, उसीका ग्रहण—त्याग करनेवाला है;—यह शुद्धद्रव्य के निरूपण स्वरूप निश्चयनय है....."

(प्रवचनसार गाथा १८९ की टीका)

(१०) "मनुष्यादि पर्यायों में कर्म कहीं जीव के स्वभाव का हनन नहीं करता या उसे आच्छादित नहीं करता; परन्तु वहाँ जीव स्वयं ही अपने दोष से कर्मानुसार परिणमित होता है, इसलिये उसे अपने स्वभाव की उपलब्धि नहीं है। जिस प्रकार पानी का प्रवाह प्रदेश की अपेक्षा से वृक्षोंरूप परिणमित होता हुआ अपने प्रवाहीपने रूप स्वभावको उपलब्ध नहीं करता—अनुभव नहीं करता, और स्वादकी अपेक्षासे वृक्षोंरूप परिणमित होता हुआ अपने स्वादिष्टपनेरूप स्वभाव को उपलब्ध नही करता, उसी प्रकार आत्मा भी प्रदेश की अपेक्षा से स्व-कर्म अनुसार परिणमित होता

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हुआ अपने अमूर्तपने रूप स्वभाव को उपलब्ध नहीं करता और भाव की अपेक्षा से स्व-कर्मरूप परिणमित होता हुआ उप राग-रहित विशुद्धिवानपनेरूप अपने स्वभाव को उपलब्ध नहीं करता। इससे ऐसा निर्धार होता है कि मनुष्यादि पर्यायों में जीवों को अपने ही दोष से अपने स्वभाव की अनुपलब्धि है, कर्मादिक अन्य किसी कारण से नहीं। "कर्म जीव के स्वभाव का पराभव करते हैं"—ऐसा कहना तो उपचार कथन है, परमार्थ से ऐसा नहीं है।"

(श्री प्रवचनसार गाथा ११८ का भावार्थ)

प्रश्न (३६८):—विकारीभाव अहेतुक है या सहेतुक ?

उत्तर:—निश्चय से विकारी भाव अहेतुक है, क्योंकि प्रत्येक द्रव्य अपना परिणमन स्वतंत्र रूप से करता है; किन्तु विकारी पर्याय के समय निमित्त का आश्रय होता है इसलिये व्यवहारनय से वह सहेतुक है। "......परमार्थ से अन्य द्रव्य अन्य द्रव्यके भाव का कर्ता नहीं होता, इसलिये जो चेतन के भाव हैं उनका कर्ता चेतन ही होता है। इस जीव को अज्ञान से जो मिथ्यात्वादि भावरूप परिणाम हैं वे चेतन हैं, जड़ नहीं हैं; अशुद्ध निश्चयनय से उन्हें चिदाभास भी कहा जाता है। इस प्रकार वे परिणाम चेतन होने से उनका कर्ता भी चेतन ही है; क्योंकि चेतन कर्म का कर्ता चेतन ही होता है—यह परमार्थ है। अभेद दृष्टि में तो जीव शुद्ध चेतनामात्र ही है, परन्तु जब वह कर्म के निमित्त से परिणमित होता है, तब उन-उन परिणामों से युक्त होता है और तब परिणाम-परिणामी की भेद दृष्टि में अपने अज्ञान भाव रूप परिणामों का कर्ता जीव ही है। अभेद दृष्टि में तो कर्ता

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कर्म भाव ही नहीं है, शुद्ध चेतनामात्र जीववस्तु है......"

(श्री समयसार गाथा ३२८ से ३३१ का भावार्थ)

[अधिक स्पष्टीकरण के लिये देखिये, अगले प्रश्न का उत्तर]

पुनश्च, दूसरे प्रकार से देखने पर आत्मा स्वतंत्र रूप से विकार करता है इसलिये वह अपना हेतु है, इसलिये उस अपेक्षा से वह सहेतुक है; और पर उसको सच्चा हेतु नहीं है, इसलिये उस अपेक्षा से अहेतुक है।

प्रश्न (३६६):—एक जीव दूसरे जीव का घात कर सकता है ?

उत्तर—नहीं; क्योंकि—

(१) अस्तित्वगुण के कारण किसी जीव या पदार्थ का कभी नाश नहीं होता; इसलिये कोई किसी को मार या जिला नहीं सकता।

(२) संयोगरूप जड़ शरीर भी स्वतंत्र पुद्गल द्रव्य है, उसका भी कोई नाश नहीं कर सतता।

(३) जिस शरीर का वियोग हो उसका व्यवहार से घात (नाश) कहलाता है। जीव और शरीर का वियोग अपनी-अपनी योग्यता से होता है; उस में आयुकर्म पूरा हुआ वह निमित्त है।

(४) घात करने वाला जीव दूसरे का घात करने का कषायभाव करके अपने शुद्ध चैतन्यभाव का ही मात्र घात करसकता है, अन्य कुछ नहीं कर सकता।

(५) परमार्थ से कोई द्रव्य किसी का कर्ता हर्ता नहीं हो सकता।

(—प्रवचनसार गाथा १६ भावार्थ)

(६) जगतमें छहों द्रव्य नित्यस्थिर रहकर प्रतिसमय अपनी अवस्थाका उत्पाद-व्यय करते रहते हैं;—इसप्रकार अनंत जड़-चेतन द्रव्य

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

एक-दूसरे से स्वतंत्र हैं; इसलिये वास्तव में किसी का नाश नहीं होता, कोई नया उत्पन्न नहीं होता, और न दूसरे उनकी रक्षा कर सकते हैं; अर्थात् इस जगत में कोई पर को उत्पन्न करनेवाला, पर की रक्षा करने वाला या विनाश करनेवाला है ही नहीं।

(७) "......जीव पर जीवों को सुखी-दुःखी आदि करने की बुद्धि करता है, परन्तु पर जीव तो अपने करने से सुखी-दुःखी नहीं होते; इसलिये वह बुद्धि निरर्थक होने से मिथ्या है-झूठी है।"
(श्री समयसार गाथा २६६ का भावार्थ)

प्रश्न (३७०)-रोग के कारण दुःख और उसके अभाव में सुख होता है-ऐसी मान्यता में सत्यासत्यता क्या है ?

उत्तर—रोग शरीर की अवस्था है। शरीर तो पुद्गल जड़ है, उसे सुख-दुःख होता ही नहीं। जीव अपने अज्ञानपने से शरीर में एकत्व बुद्धि करे तो उसे सुख-दुःख मालूम होता है; और सच्चे ज्ञान द्वारा परमें एकत्व बुद्धि न करे तो उसे सुख-दुःखकी वृत्ति उत्पन्न न हो।

ज्ञानी शरीर की रोग ग्रस्त दशाके कारण अपने को किंचित् दुःख नहीं मानते। उन्हें अपनी सहन शक्ति की निर्बलता से अल्प दुःख होता है, किन्तु वह गौण है, क्योंकि वे दुःख के स्वामी नहीं बनते। अपने ध्रुव स्वभावकी दृष्टि के बल से उनके राग-द्वेष दूर होता जाता है और ज्यों-ज्यों कषायका अभाव होता जाता है त्यों-त्यों उन्हें सुखका अनुभव निरन्तर वर्तता रहता है।

"....सुखी-दुःखी होना इच्छानुसार समझना; किन्तु

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बाह्य कारणों के आधीन नहीं....इच्छा होती है वह मिथ्यात्व, अज्ञान और असंयम से होती है तथा इच्छामात्र आकुलता-मय है और आकुलता ही दुःख है.......मोह के सर्वथा अभाव से जब इच्छा का सर्वथा अभाव हो तब सर्व दुःख दूर होकर सत्य सुख प्रगट होता है।"

(देखो, मोक्षमार्ग प्रकाशक गुजराती आवृत्ति पृष्ठ ७५–७६)

प्रश्न (३७१)—क्या जीव कर्म के उदय अनुसार विकार करता है ?

उत्तर—नहीं; क्योंकि:—

१—"मोहकर्म का विपाक होने पर जीव जिसप्रकार का विकार करे तदनुसार जीव ने फल भोगा कहलाता है। उसका अर्थ इतना है कि जीव को विकार करने में मोह कर्म का विपाक निमित्त है। कर्म का विपाक कर्म में होता है जीव में नहीं होता। जीवको अपने विभावभावका अनुभव हो वह जीवका विपाकअनुभव है।"

(गुजराती मोक्षशास्त्र अ० ८, सूत्र २१ टीका)

२—"....."औदयिकभाव" में सर्व औदयिकभाव बंध के कारण हैं—ऐसा नहीं समझना चाहिये, किन्तु मात्र मिथ्यात्व, असंयम, कषाय और योग—यह चार भाव बंधके कारण हैं—ऐसा जानना।" (श्री धवला पुस्तक ७, पृष्ठ ९–१०)

३—"औदयिका भावाः बंधकारणम्"—इसका अर्थ इतना ही है कि यदि जीव मोहके उदय में युक्त हो तो बंध होता है। **द्रव्यमोहका उदय होने पर भी यदि जीव शुद्धात्म भावना के बल द्वारा भाव मोहरूप परिणमित न हो तो बंध नहीं**

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

होता । यदि जीव को कर्म के उदय मात्रसे बंध होता हो तो संसारी को सर्वदा कर्म के उदयकी विद्यमानता से सर्वदा बंध ही होता रहे, कभी मोक्ष होगा ही नहीं; इसलिये ऐसा समझना कि कर्म का उदय बंध का कारण नहीं है, किन्तु जीव का **भावमोहरूप** परिणमन होना ही बंधका कारण है ।

(प्रवचनसार (हिन्दी) पृष्ठ ५८–५९ श्री जयसेनाचार्यकृत गाथा ४५ की टीका)

४–तेषां जीवगतरागादि भावप्रत्ययानामभावे, द्रव्यप्रत्ययेषु विद्यमानेष्वपि, सर्वेष्टानिष्टविषयममत्वा भावपरिणता जीवा न वध्यन्त इति । तथाहि–यदि जीवगतरागाद्यभावेऽपि द्रव्यप्रत्ययोदयमात्रेण बंधो भवति तर्हि सर्वदैव बन्ध एव । कस्मात् । संसारिणां सर्वदैव कर्मोदयस्य विद्यमानत्वादिति ।"

अर्थः–द्रव्यास्रव विद्यमान होनेपर भी, जीवके रागादि भावास्रव के अभाव से, सर्व इष्ट–अनिष्ट विषयों में ममत्वभावरूप परिणमित न होने वाले जीव बँधते नहीं हैं; और यदि जीव को रागादि **का अभाव होने पर भी द्रव्यास्रव के उदयमात्रसे बंध हो तो संसारी जीवों को सर्वदा ही कर्मोंका उदय होने से, सर्वदा बंध ही हो ।**

(श्री पंचास्तिकाय गाथा १४९ की जयसेनाचार्य कृत टीका)

५–"......ज्ञानी को यदि पूर्वबद्ध द्रव्यप्रत्यय विद्यमान है तो भले हों तथापि वे (ज्ञानी) तो निरास्रव ही हैं, क्योंकि कर्मोदय का कार्य जो राग-द्वेष मोहरूप आस्रवभाव उसके अभाव में द्रव्यप्रत्यय बंध के कारण नहीं हैं (जिसप्रकार पुरुष को राग भाव हो तभी यौवन प्राप्त स्त्री उसे वश कर सकती है, उसी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रकार जीवको आस्रवभाव हो तभी उदयप्राप्त द्रव्यप्रत्यय नवीन बंध कर सकते हैं।")

(श्री समयसार गाथा १७३ से १७६ की टीका)

६–इससे सिद्ध होता है कि-कर्मोदय जीवको विकार कराता है अर्थात् कर्मों का जैसा उदय हो तदनुसार जीवको विकार करना पड़ता है–ऐसा नहीं है। जीव अपनी अज्ञानतावश कर्मोदय में युक्त हो, तभी वह कर्मोदय अपने विकार में निमित्तभूत कहलाता है; किन्तु यदि वह अपने आत्मस्वरूप में स्थिर होकर कर्मोदय में युक्त न हो तो वह कर्मोदय उस में विकार का निमित्त नहीं होगा और न कर्म के नवीन बंध का निमित्त कारण बनेगा, किन्तु निर्जरा का कारण होगा।

७–"......यह अविद्या तेरी ही फैलाई हुई है; तू अविद्या रूप कर्म में न पड़कर स्व-को युक्त न करे तो जड़का (कर्मका) कोई जोर नहीं है।"

(श्री दीपचन्दजीकृत अनुभवप्रकाश गुजराती आवृत्ति पृ० ३७)

८–अज्ञानी जीव रागद्वेष की उत्पत्ति पर द्रव्य (कर्मादि) से मानकर परद्रव्य पर कोप करता है कि–"यह परद्रव्य मुझे राग–द्वेष उत्पन्न करते हैं, उन्हें दूर करूँ।"–ऐसे अज्ञानी जीव को समझाने के लिये आचार्यदेव उपदेश देते हैं कि–राग–द्वेष की उत्पत्ति अज्ञान से आत्मा में ही होती है और वे आत्मा के ही अशुद्धपरिणाम हैं, इसलिये उस अज्ञान का नाश करो; सम्यग्ज्ञान प्रगट करो; **आत्मा ज्ञानस्वरूप है–ऐसा अनुभव करो;** परद्रव्य को राग–द्वेष उत्पन्न करनेवाला मानकर उसपर कोप न करो।" (श्री समयसार कलश २२० का भावार्थ)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

९—कर्म का उदय जीव को कोई असर नहीं कर सकता-यह बात श्री समयसार नाटक के सर्वविशुद्धि द्वार में निम्नानुसार समझाई है:—

"कोउ शिष्य कहै स्वामो रागदोष परिनाम,
ताको मूल प्रेरक कहहु तुम कौन है;
पुग्गल करम जोग किधौं इन्द्रिनिकौ भोग,
किधौं धन किधौं परिजन किधौं भौन है ?"

अर्थ;—शिष्य पूछता है कि हे स्वामी ! राग–द्वेष परिणामों का मूल प्रेरक कौन है वह आप कहिये। (क्या वह) पौद्गलिक कर्म है ? योग (मन–वचन–काय की क्रिया) है, इन्द्रियों का भोग है ? धन है ? परिजन है ? या मकान है ?

"गुरु कहैं छहों दर्व अपने अपने रूप,
सबनिकौ सदा असहाई परिनौन है;
कोउ दरव काहुकौ न प्रेरक कदाचि तातैं,
रागदोष मोह मृषा मदिरा अचौन है।"

अर्थ:—गुरु समाधान करते हैं कि छहों द्रव्य अपने–अपने स्वरू में सदैव असहाय परिणमन करते हैं; इसलिये किसी द्रव्य किसी द्रव्य की परिणति के लिये कभी भी प्रेरक नहीं होते, इसलिये राग–द्वेष का मूल कारण मोह मिथ्यात्वका मदिरा पान है।

(देखो, समयसार नाटक पृष्ठ ३५१–३५२

१०—भावकर्म का कर्ता अज्ञानी जीव ही है—ऐसा श्री आचार्य देव **समयसार** में युक्ति द्वारा निम्नानुसार सिद्ध करते हैं:—

"यदि मिथ्यात्व नाम की (मोहनीय कर्म की) प्रकृति आत्मा को मिथ्यादृष्टि बनाती है—ऐसा माना जाये तो तेरे मत में अचेतन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रकृति (मिथ्यात्वभाव की) कर्ता हुई ! (इसलिये मिथ्यात्व भाव अचेतन सिद्ध हुआ ।)"

(समयसार गाथा–३२८)

"अथवा, यह जीव पुद्‌गल द्रव्य के मिथ्यात्व को करता है–ऐसा माना जाये तो पुद्‌गल द्रव्य मिथ्यादृष्टि सिद्ध होगा !–जीव नहीं !"

(गाथा ३२९)

"अथवा यदि जीव और प्रकृति–दोनों पुद्‌गलद्रव्य को मिथ्यात्व भावरूप करते हैं—ऐसा माना जाये तो, जो दोनों द्वारा किया गया उसका फल दोनों भोगेंगे !

(गाथा ३३०)

"अथवा यदि पुद्‌गल द्रव्य को मिथ्यात्वभावरूप न तो प्रकृति करती है या न तो जीव करता है (दो में से कोई नहीं करता) –ऐसा माना जाये तो पुद्‌गलद्रव्य स्वभाव से ही मिथ्यात्वभावरूप सिद्ध होगा। वह क्या वास्तव में मिथ्या नहीं है ?"

(गाथा ३३१)

११–जीव ने ही अपनी अज्ञानता से भूल की है; उसमें बेचारा कर्म क्या करे ? कहा है कि—

❀ "कर्म विचारे कौन भूल मेरी अधिकाई,
अग्नि सहे घनघात लोह की संगति पाई।"

अर्थः—कर्म बेचारा कौन ? (किस गिनती में ?) भूल तो मेरी ही बड़ी है। जिसप्रकार अग्नि लोहेकी संगति करती है तो उसे घनों

❀"भद्राणामपि नश्यन्ति गुणाः येषां संसर्गः खलैः।
वैश्वानरो लोहेन मिलितः तेन पिट्टयते घनै: ॥ ११० ॥

अर्थः—दुष्टों (कर्म) के साथ जिनका सम्बन्ध है, उन भद्र (विवेकी) पुरुषों के भी गुण नष्ट हो जाते हैं; जैसे अग्नि लोहे के साथ मिलती है तब वह घनों से पीटी जाती है—कूटी जाती है।"

(देखो, परमात्म प्रकाश अ० २–श्लोक ११०)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

के आघात सहना पड़ते हैं, (उसीप्रकार यदि जीव कर्मोदय में युक्त हो तो उसे राग–द्वेषादि विकार होते हैं)

१२–"......और तत्त्व निर्णय करने में कहीं कर्म का दोष तो है नहीं किन्तु तेरा ही दोष है। तू स्वयं तो महंत रहना चाहता है और अपना दोष कर्मादिक में लगाता है! परन्तु जिन आज्ञा माने तो ऐसी अनीति संभव न हो। तुझे विषय–कषायरूप ही रहना है, इसलिये झूठ बोलता है। यदि मोक्ष की सच्ची अभिलाषा हो तो तू ऐसी युक्ति क्यों बनाये ?......"

(मोक्षमार्ग प्रकाशक अ० ९ देहली से प्रकाशित पृष्ठ ४५८)

१३–"कर्म खलु........ स्वयमेव षटकारकीरूपेण व्यवतिष्ठमान न कारकान्तरमपेक्षते। एवं जीवः......स्वयमेव षट्कारकीरूपेण व्यवतिष्ठमानो न कारकान्तरमपेक्षते। अतः कर्मणः कर्तुर्नास्ति जीवः कर्ता, जीवस्य कर्तुर्नास्ति कर्म कर्तृ निश्चयेनेति !"

अर्थ —कर्म वास्तव में....स्वयं ही षट्कारकरूप परिणमित होता है इसलिये अन्य कारकों (अन्य के षट् कारकों) की अपेक्षा नहीं रखता। उसीप्रकार जीव.... स्वयं ही षट् कारकरूप से परिणमित होता है इसलिये अन्य के षट्कारकों की अपेक्षा नहीं रखता; इसलिये निश्चयसे कर्म का कर्ता जीव नहीं है और जीवका कर्ता कर्म नहीं है।

भावार्थः—निश्चयसे पुद्गल द्रव्य ज्ञानावरणादि कर्म योग्य पुद्गल स्कंधोंरूप परिणमित होता है और जीव द्रव्य भी अपने औदयिकादि भावोंरूपसे स्वयं परिणमित होता है। जीव और पुद्गल –दोनों एक–दूसरे के कर्तव्यकी अपेक्षा नहीं रखते।

(–श्री पंचास्तिकाय गाथा ६२ की संस्कृत टीका)

प्रश्न (३७२)–आत्मा अपनी योग्यतासे ही राग (विकार) करता

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हैं;–ऐसा मानने से तो विकार आत्माका स्वभाव हो जायेगा; इसलिये रागादिक विकार को कर्मकृत मानना चाहिये–यह ठीक है ?

उत्तर—विकार आत्म द्रव्यका त्रिकाली स्वभाव नहीं है, किन्तु क्षणिक योग्यतारूप पर्याय स्वभाव है। वर्तमान पर्यायमें स्वको चूककर परद्रव्यका अवलम्बन किया जाये तो पर्यायमें नया–नया विकार होता है; किन्तु यदि स्वसन्मुखता की जाये तो वह दूर हो सकता है। जीव रागद्वेषरूप विकार पर्यायमें स्वयं करता है; इसलिये अशुद्ध निश्चयनय से वह जीव का है। स्वभाव में विकार नहीं है। स्वभाव में लीन होने से वह विकार दूर हो जाता है। विकारी पर्याय अपनी है इसलिये निश्चय कहा है, लेकिन विकार अपना स्थायी और असली स्वरूप नहीं है इसलिये वह अशुद्ध है। इसलिये अशुद्ध निश्चयनय से वह जीवकृत है–ऐसाकहा है।

प्रश्न (३७३)(कभी-कभी जीव पर जड़ कर्मका जोर बढ़ जाता है और कभी जड़ कर्म पर जीवका जोर बढ़ जाता है–यह ठीक है ?

उत्तर—(१) नहीं; यह मान्यता यथार्थ नहीं है; क्योंकि जीव और जड़कर्म–यह दो पदार्थ त्रिकाल भिन्न–भिन्न हैं; उनका परस्पर अत्यन्त अभाव है; इसलिये कोई किसी पर जोर नहीं चलाता। (२) जीव जब विपरीत पुरुषार्थ करे तब वह अपनी विपरीत वृत्ति को कर्म में युक्त करता है; उस अपेक्षा से कर्म का जोर आरोप से कहा जाता है; और जब जीव अपने योग्य स्वभावमें सावधान होकर सीधा पुरुषार्थ करता है तब वह अपना बल अपने में बढ़ाता हुआ, कर्म की ओर की वृत्ति क्रमशः छोड़ता

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जाता है; इसलिये ऐसा कहा जाता है कि जीव बलवान हुआ।

(३) प्रत्येक द्रव्यका बल और शक्ति उसके स्वद्रव्य में है। कर्म की शक्ति जीवमें नहीं जा सकती, इसलिये कर्म जीवको कभी भी आधीन नहीं कर सकता।

प्रश्न (३७४)—इन्द्रियों के विषय भी आत्माको सुख—दुःख नहीं दे सकते उसका कारण क्या ?

उत्तर—(१) "स्पर्शनादिक इन्द्रियाँ जिनका आश्रय करती हैं—ऐसे इष्ट विषयों को प्राप्त करके (अपने अशुद्ध) स्वभावरूप परिणमित होता हुआ आत्मा स्वयमेव सुखरूप (इन्द्रिय सुखरूप) होता है; देह सुखरूप नहीं होती।"

(श्री प्रवचनसार गाथा ६५ अन्वयार्थ)

(२) "शरीर सुख—दुःख नहीं करता। देव का उत्तम वैक्रियिक शरीर सुख का कारण नहीं है या नारकी का शरीर दुःखका कारण नहीं है। आत्मा स्वयं ही इष्ट अनिष्ट विषयों के वश होकर सुख—दुःख की कल्पनारूप परिणमित होता है।"

(श्री प्रवचनसार गाथा ६६ भावार्थ)

(३) "संसार में या मोक्षमें आत्मा अपने आप ही सुखरूप परिणमित होता है; उसमें विषय अकिंचित्कर हैं अर्थात् कुछ नहीं करते। अज्ञानी जन विषयों को सुखका कारण मानकर व्यर्थ ही उनका अवलम्बन करते हैं।"

(श्री प्रवचनसार गाथा ६७ का भावार्थ)

(४) स्व-परके भेदज्ञानके अभाव से अज्ञानी जीव परमें (इन्द्रिय विषयोंमें) सुख—दुःखकी मिथ्या कल्पना करके उनमें इष्ट—अनिष्ट की बुद्धि करके अपने को सुखी—दुःखी मानता है, किन्तु विषय तो जड़ हैं, वे इष्ट—अनिष्ट हैं ही नहीं और वस्तुस्वभाव ही ऐसा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है कि एक द्रव्य दूसरे का कुछ नहीं कर सकता।

(५) "....इसप्रकार पदार्थों में तो इष्ट–अनिष्टपना है नहीं। यदि पदार्थों में इष्ट–अनिष्टपना हो तो जो पदार्थ इष्टरूप हो वह सबको इष्टरूप ही होगा, और जो अनिष्टरूप हो वह सबको अनिष्टरूप ही होगा; किन्तु ऐसा तो नहीं होता; मात्र यह जीव स्वयं ही कल्पना करके उसे इष्ट–अनिष्टरूप मानता है; परन्तु वह कल्पना मिथ्या है।"

(मोक्षमार्ग प्रकाशक पृष्ठ १५६ देहली से प्रकाशित)

प्रश्न (३७५)–क्या निमित्तके बल से या प्रेरणा से कार्य होता है ?

उत्तर—(१) नहीं; बात यह है कि जिसप्रकार कोई भी कार्य अन्य के आधीन नहीं है, और वह (कार्य अन्यकी) बुद्धि अथवा प्रयत्न के भी आधीन नहीं है; क्योंकि कार्य तो अपनी परिणमन शक्तिसे ही होता है। यदि उसका बुद्धि और प्रयत्न के साथ मेल बैठ गया तो (अज्ञानी) ऐसा मानता है कि यह कार्य बुद्धि और प्रयत्न से हुआ है; और यदि उसका अन्य बाह्य निमित्तों के साथ मेल बैठ गया तो (अज्ञानी) ऐसा समझता है कि यह कार्य निमित्त से हुआ है; परन्तु तात्त्विक दृष्टि से देखें तो प्रत्येक कार्य अपनी–अपनी योग्यता से ही होता है; क्योंकि उसके अन्वय और व्यतिरेक भी उसके साथ होते हैं; इसलिये निमित्त को किसी भी अवस्था में प्रेरक–कारण मानना उचित नहीं है।

[पं० श्री फूलचन्दजी सम्पादित, श्री तत्त्वार्थसूत्र पृ० २५१]

(२) "जिसप्रकार शंख परद्रव्यको भोगता–खाता है, फिर भी उसकी श्वेतता परद्वारा कृष्ण नहीं की जा सकती क्योंकि पर अर्थात् परद्रव्य किसी द्रव्य को परभावस्वरूप करनेका निमित्त (निमित्त कारण) नहीं बन सकता...."

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(श्री समयसार·गा० २२० से २२३ की गु० टीका)

प्रश्न (३७६)–ज्ञानी–धर्मात्मा परजीवों का भला करने के लिये उपदेश देते हैं–यह विधान बराबर है ?

उत्तर—नहीं; यह बात बराबर नहीं है; क्योंकि ज्ञानी जानते हैं कि कोई जीव पर आत्माका भला बुरा नहीं कर सकता। सामने वाला जीव अपनी योग्यतासे (सत्य समझने के प्रयत्न द्वारा) समझे तो उपदेशको निमित्त कहा जाता है।

छद्मस्थ ज्ञानीको अपनी निर्बलता के कारण उपदेश देने का विकल्प उठता है और वाणी वाणी के कारण निकलती है उसमें उपदेशका विकल्प (राग) तो निमित्तमात्र है। ज्ञानी राग और वाणी का स्वामी नहीं है, किन्तु राग और वाणी का व्यवहार से ज्ञाता है।

प्रश्न (३७७)–पुद्गल जीवको विकाररूप परिणमित कराता है–यह बात ठीक है ?

उत्तर—(१) नहीं; "ऐसा तो कभी नहीं होता, क्योंकि एक द्रव्य दूसरे द्रव्यकी परिणतिका कर्ता नहीं होता।"

("आत्मावलोकन" पृष्ठ ४६)

(२) "कोई द्रव्य किसी द्रव्यको परिणमित नहीं करता, क्योंकि कोई द्रव्य निःपरिणामी (अपरिणामी) नहीं है–सर्व द्रव्य परिणामी हैं....."

—(आत्मावलोकन पृ० ७३–७४)

प्रश्न (३७८)–"कोई ऐसा जाने कि चिद्विकाररूप तो जीव परिणमित होता है, किन्तु ऐसा होने में (परिणमित होने में) पुद्गल स्वयं निमित्तकर्ता होता है, अर्थात् यह जीव विकाररूप

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

परिणमित हो उसके लिये पुद्गल स्वयं निमित्तकर्ता होकर वर्तता है–यह ठीक है ?"

उत्तर—नहीं; "ऐसा तो कभी नहीं हो सकता, क्योंकि—

(१) यदि पुद्गल वह चिद्विकार होने में जान-बूझकर स्वयं कर्म निमित्तरूप हो, तो वह ज्ञानवंत हुआ। वह तो अनर्थ उत्पन्न हुआ। जो अचेतन था वह चेतन हो गया। यह एक दूषण।

(२) यदि जीव को विकार होने में पुद्गल कर्मत्वरूप से निमित्त होता ही रहे, तो यह दूषण उत्पन्न हो कि-कोई द्रव्य किसी द्रव्यका शत्रु नहीं है, तथापि यहाँ पुद्गल जीव का शत्रु हुआ..."

(आत्मावलोकन पृष्ठ ४६-४७)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रकरण छठवाँ

उपादान-निमित्त अधिकार तथा निमित्त--नैमित्तिक अधिकार

प्रश्न (३७९)–कार्य किस प्रकार होता है ?

उत्तर–"कारणानुविधायित्वादेव कार्याणि ।"

(समयसार गाथा, १३०–१३१ टीका)

"कारणानुविधायीनि कार्याणि ।" (समयसार गाथा ६८ टीका) कारण का अनुसरण करके ही कार्य होते हैं। कार्य को कर्म, अवस्था, पर्याय, हालत, दशा, परिणाम और परिणति भी कहते हैं।

(यहाँ कारणको उपादान कारण समझना, क्योंकि उपादान कारण ही सच्चा कारण है।)

प्रश्न (३८०)–कारण किसे कहते हैं ?

उत्तर—कार्य की उत्पादक सामग्री को कारण कहते हैं ?

प्रश्न (३८१)–उत्पादक सामग्री के कितने भेद हैं ?

उत्तर—दो भेद हैं–उपादान और निमित्त। उपादान को निजशक्ति अथवा निश्चय कहते हैं और निमित्तको परयोग अथवा व्यवहार कहते हैं।

प्रश्न (३८२)–उपादान कारण किसे कहते हैं ?

उत्तर—(१) जो द्रव्य स्वयं कार्यरूप परिणमित हो उसे उपादान

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कारण कहते हैं, जैसे कि–घड़े की उत्पत्ति में मिट्टी उसका **त्रिकाली उपादान कारण है;** (द्रव्यार्थिक नय से है।) –(२) अनादिकाल से द्रव्य में जो पर्यायों का प्रवाह चला आ रहा है उसमें **अनन्तर पूर्व क्षणवर्ती पर्याय** उपादान कारण है और **अनन्तर उत्तर क्षणवर्ती पर्याय** कार्य है, जैसे कि–मिट्टी का घड़ा होने में मिट्टी का पिण्ड वह घड़े की अनन्तर पूर्व क्षणवर्ती पर्याय है और घड़ारूप कार्य वह पिण्ड की अनन्तर उत्तर क्षणवर्ती पर्याय है। अनन्तर पूर्व **क्षणवर्ती पर्याय** का व्यय वह क्षणिक उपादान कारण कहा जाता है। (पर्यायार्थिक नयसे है।) (३) उस समय की पर्याय की योग्यता वह उपादान कारण है और वही पर्याय कार्य है। उपादान ही सच्चा (वास्तविक) कारण (पर्यायार्थिकनय से) है।

[आधार—ध्रुवउपादान तथा क्षणिकउपादान के लिये देखो—(१) अष्टसहस्री श्लोक ५८, टीका पृष्ठ २१०, (२) चिद्‌विलास पृष्ठ ३६, (३) ज्ञान दर्पण पृष्ठ २५–४०–५६]

प्रश्न (३८३) योग्यता किसे कहते हैं ?

उत्तर—"योग्यतैव विषयप्रतिनियमकारणमिति"

(न्याय दीपिका, पृष्ठ २७)

१–योग्यता ही विषयका प्रतिनियामक कारण है। [यह कथन ज्ञानकी योग्यता (सामर्थ्य) को लेकर है; परन्तु योग्यता का कारणपना सर्व में सर्वत्र समान है।]

२–सामर्थ्य, शक्ति, पात्रता, लियाकत, ताकत, योग्यता, शक्ति–यह "योग्यता" शब्द के अर्थ हैं।

प्रश्न(३८४)–निमित्त कारण किसे कहते है ?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उत्तर–जो पदार्थ स्वयं कार्यरूप परिणमित न हो, परन्तु कार्य की उत्पत्ति में अनुकूल होने का जिसपर आरोप आ सके उस पदार्थ को निमित्त कारण कहते हैं; जैसे कि–घड़े की उत्पत्ति में कुम्भकार, दंड, चक्र आदि निमित्त कारण हैं। [निमित्त सच्चा कारण नहीं है; वह अकारणवत्–अहेतुवत्* है, क्योंकि वह उपचारमात्र अथवा व्यवहार कारण है।]

प्रश्न (३८५)–निमित्तकारण के कितने भेद हैं ?

उत्तर—दो भेद हैं:–(१)प्रेरक निमित्त और (२) उदासीन निमित्त।

प्रश्न (३८६)–प्रेरक निमित्त किसे कहते हैं ?

उत्तर–गमन क्रिया वाले जीव, पुद्गल तथा इच्छादि वाले जीव प्रेरक निमित्त कहलाते हैं। प्रेरक निमित्त जबरन् उपादान में कार्य कर देते हैं या प्रभावादि डाल सकते हैं–ऐसा नहीं समझना क्योंकि दोनों पदार्थों का एक दूसरे में अभाव है। प्रेरक निमित्त उपादान को प्रेरणा नहीं करता।

प्रश्न (३८७)–उदासीन निमित्त किसे कहते हैं ?

उत्तर—धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाश और कालादि निष्क्रिय (गमन क्रिया रहित) या रागरहित द्रव्यों को उदासीन निमित्त कहते हैं।

[निमित्तों के उपभेद बताने के लिये किन्हीं निमित्तों को प्रेरक और किन्हीं को उदासीन कहा जाता है; किन्तु सर्वप्रकार के निमित्त उपादान के लिये तो धर्मास्तिकायवत् उदासीन ही हैं। निमित्त के भिन्न–भिन्न प्रकारों का ज्ञान कराने के लिये ही उसके यह दो भेद किये गये हैं।]

---

* पंचाध्यायी भाग–२, गाथा ३५१.

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रश्न (३८८)—"कुम्हार ने चाक, दंड आदि से घड़ा बनाया;" उसमें घड़ारूप कार्य में (१) त्रिकाली और क्षणिक उपादानकारण कौन हैं ? (२) उदासीन और प्रेरक निमित्त कौन से हैं ?

उत्तर—(१) त्रिकाली उपादान कारण मिट्टी, और घड़ारूप कार्य की अनंतर पूर्ववर्ती पर्याय—मिट्टी के पिण्डका अभाव (व्यय) तथा घड़ारूप होने की वर्तमान पर्यायकी योग्यता—यह दोनों क्षणिक उपादान हैं ।

(२) घड़ा बनाने के रागवाला कुम्हार और क्रियावान् चाक, दंडादि प्रेरक निमित्त हैं ।

चाक की कीली, काल, आकाश, धर्म अधर्म आदि उदासीन निमित्त हैं; क्योंकि वे गमनक्रिया रहित और राग (इच्छा) रहित हैं ।

प्रश्न (३८९)—उदासीन निमित्त उपादान में कुछ नहीं कर सकते, परन्तु प्रेरक निमित्त तो कुछ कार्य—प्रभाव असर तो करते होंगे ?

उत्तर—नहीं; उदासीन या प्रेरक निमित्त उपादान में कुछ करते ही नहीं क्यों कि परके लिये सभी निमित्त उदासीन ही हैं। श्री पूज्यपाद आचार्य **इष्टोपदेश** की ३५ वीं गाथा में कहते हैं कि:—

नाज्ञो विज्ञत्वमायाति, विज्ञो नाज्ञत्वमृच्छति ।
निमित्तमात्रमन्यस्तु, गतेर्धर्मास्तिकायवत्" ॥ ३५ ॥

अर्थ—अज्ञानी विशेष प्रकारके ज्ञान भाव को प्राप्त नहीं करता और विशेष ज्ञानी अज्ञानपने को प्राप्त कहीं करता। गतिको जिस-प्रकार धर्मास्तिकाय निमित्त है उसी प्रकार अन्य तो निमित्तमात्र है।

भावार्थ—"तत्त्वज्ञान की उत्पत्ति के लिये अयोग्य अभव्यादि जीव

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

धर्माचार्यादिकों के हजारों उपदेशों से भी तत्त्वज्ञान प्राप्त नहीं कर सकते।"

"कार्य की उत्पत्ति करने के लिये कोई भी प्रयत्न स्वाभाविक गुण की अपेक्षा करता रहता है। सैकड़ों व्यापारों से (प्रयत्नों से) भी बगुले को तोते की भाँति नहीं पढ़ाया जा सकता।"

यहाँ शंका यह होती है कि–ऐसे तो बाह्य निमित्तों का निराकरण ही हो जायेगा। इस विषय में उत्तर यह है कि–अन्य जो गुरु आदिक तथा शत्रु आदिक हैं वे प्रकृत कार्य के उत्पादन में तथा विध्वंसन (नाश) में सिर्फ निमित्तमात्र हैं। **वास्तव में कोई कार्य होने में या बिगड़ने में उसकी योग्यता ही साक्षात् साधक होती है...**

(परमश्रुत प्रभावक मंडल मुंबई से प्रकाशित–इष्टोपदेश गाथा ३५की टीका–पृष्ठ ४२–४३)

प्रश्न (३९०)–कभी–कभी प्रेरक निमित्त जैसे कि–शीघ्र गति करती मोटर ट्रेन आदि द्वारा अनिच्छित स्थान में गति आदि देखे जाते हैं, इसलिये उपादान को प्रेरक निमित्तों के आधीन परिणमित होना पड़ता है–यह ठीक है?

उत्तर—नहीं; किसी भी प्रेरक निमित्तों के आधीन उपादान को परिणमित होना पड़ता है–ऐसा नहीं है; परन्तु इतना निश्चित होता है कि– गति क्रिया जीवकी इच्छानुसार नहीं हो सकी। वास्तविक रीति से देखा जाये तो शरीर और जीवकी क्रियावती शक्ति की उस समय की योग्यता ही वैसी थी इसलिये तदनुसार गति हुई।

प्रश्न (३९१)–शीघ्र गति करती मोटरादि तो उसमें निमित्तमात्र हैं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

किन्तु पुद्‌गल कर्म, मन वचन काय, इन्द्रियों का भोग, धन, परिजन, मकान इत्यादि जीव को राग–द्वेषरूप परिणाम करने में प्रेरक हैं ?

उत्तर—छहों द्रव्य सर्व-अपने–अपने स्वरूप से सदैव असहाय (स्वतंत्र) परिणमन करते हैं; कोई द्रव्य किसी का प्रेरक कभी नहीं है; इसलिये **कोई भी परद्रव्य रागद्वेष का प्रेरक नहीं है;** परन्तु जीवका मिथ्यात्व मोहरूप भाव है वही (अनंतानुबंधी) राग–द्वेषका कारण है।

[देखो, प्रकरण ५, प्रश्न ३७१ का उत्तर]

प्रश्न(३९२)–पुद्‌गलकर्म की बलजबरी से जीवको राग–द्वेष करना पड़ता है; पुद्‌गलद्रव्य कर्मों का वेष धारण करके जहाँ–जहाँ बल करता है वहाँ–वहाँ जीवको राग–द्वेष अधिक होते हैं–यह बात सत्य है ?

उत्तर—नहीं; क्योंकि जगत में पुद्‌गलका संग तो सदैव रहता है। यदि उसकी बलजबरी से जीव को रागादि विकार हों, तो शुद्ध भावरूप होने का कभी अवसर ही नहीं आ सकेगा; इसलिये ऐसा समझना चाहिये कि शुद्ध या अशुद्ध परिणमन करने में चेतन-स्वयं समर्थ है।

(समयसार नाटक सर्व विशुद्ध द्वार, कवित्त ६१ से ६६)

प्रश्न (३९३)–निमित्त–नैमित्तिक सम्बन्ध किसे कहते हैं ?

उत्तर—जब उपादान स्वयं स्वतः कार्यरूप परिणमित होता है तब **भावरूप या अभावरूप** किस उचित (योग्य)निमित्तकारणका उसके साथ सम्बन्ध है वह बतलाने के लिये उस कार्य को

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नैमित्तिक कहते हैं। इसप्रकार भिन्न–भिन्न पदार्थों के स्वतंत्र सम्बन्ध को निमित्तनैमित्तिक सम्बन्ध कहते हैं।

निमित्त–नैमित्तिक सम्बन्ध परस्पर की परतंत्रता का सूचक नहीं है, परन्तु नैमित्तिक के साथ कौन निमित्तरूप पदार्थ है उसका वह ज्ञान कराता है।

जिस कार्य को निमित्तकी अपेक्षा से नैमित्तिक कहा है, उसे अपने उपादान की अपेक्षासे उपादेय भी कहते हैं।

(१) निमित्त–नैमित्तिक सम्बन्ध दोनों स्वतंत्र पर्यायों के बीच होता है।

(२) निमित्त और नैमित्तिक का स्वचतुष्टय (द्रव्य–क्षेत्र–काल –भाव) भिन्न–भिन्न है।

(३) उपादान–उपादेय सम्बन्ध **एक ही पदार्थको लागू होता है।**

(४) कार्य की निमित्त द्वारा पहिचान कराते हुए वह नैमित्तिक कहलाता है, और उसी कार्य की उपादान द्वारा पहिचान कराते हुए वह उपादेय कहलाता है।

प्रश्न (३९४)–प्रेरक निमित्त और उदासीन निमित्तके दृष्टान्त दीजिये।

उत्तर— (१) घट की उत्पत्ति में दंड, चक्र, कुम्हारादि प्रेरक निमित्त हैं, क्योंकि दंड, चक्र और कुम्हारका हाथ गतिमान है और कुम्हार उस समय घड़ा बनाने की इच्छावाला है, धर्मास्तिकाय और चक्र को घूमने की धुरी–वे उदासीन निमित्त हैं; परन्तु वे सभी निमित्त मिट्टीरूप उपादान के प्रति (धर्मास्तिकायवत्) उदासीन कारण हैं।

(२) कोई मनुष्य घोड़े पर बैठकर बाहर गाँव जाता है; उसमें घोड़ा गतिमान होने से प्रेरक निमित्त है और धर्मास्तिकाय

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उदासीन निमित्त हैं; परन्तु वे निमित्त उपादानरूप सवारी करनेवाले मनुष्य के प्रति (धर्मास्तिकायवत्) उदासीन कारण हैं।

[जो प्रेरक निमित्त कारण हैं वे गति या इच्छापना बतलाने के लिये प्रेरणा करते हैं–ऐसा व्यवहारनयसे कहा जाता है, किन्तु वास्तव में किसी द्रव्यकी पर्याय दूसरे द्रव्यकी पर्यायको प्रेरक नहीं हो सकती।]

प्रश्न (३९५)–भावरूप निमित्त और अभावरूप निमित्त के दृष्टान्त दीजिये।

उत्तर—(१) जिसप्रकार उत्तरंग (तरंगें उठनेवाली) और निस्तरंग (तरंग रहित) दशाओं को वायु का चलना या न चलना निमित्त होने पर भी वायु और समुद्र में व्याप्यव्यापक भाव के अभाव के कारण कर्ताकर्मपने की असिद्धि होने से, समुद्र ही स्वयं अन्तर्व्यापक होकर उत्तरंग अथवा निस्तरंग अवस्था में आदि–मध्य–अंत में व्याप्त होकर उत्तरंग अथवा निस्तरंग ऐसा अपने को करता हुआ अपने एक को ही करता प्रतिभासित होता है; परन्तु अन्यको करता प्रतिभासित नहीं होता....”

(२) “....उसीप्रकार संसार और निःसंसार अवस्थाओं को पुद्गलकर्म के विपाक का संभव (उत्पत्ति) और असंभव निमित्त होने पर भी पुद्गलकर्म और जीवके बीच व्याप्यव्यापक भावका अभाव होने के कारण कर्ताकर्मपने की असिद्धि होने से जीव ही स्वयं अन्तर्व्यापक होकर संसार अथवा निःसंसार अवस्था में आदि–मध्य–अन्त में व्याप्त होकर अपने को ससंसार या निःसंसार करता हुआ, अपने एक को ही करता हुआ प्रतिभासित

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हो परन्तु अन्यको करता प्रतिभासित न हो....”

(श्री समयसार गाथा ८३ की टीका)

[दृष्टान्त में–वायु का चलना वह सद्भावरूप निमित्त है और न चलना वह अभावरूप निमित है।

सिद्धान्त में–पुद्गल कर्मके विपाकका संभव वह सद्भावरूप निमित्त है और उनका असंभव वह अभावरूप निमित्त है।]

प्रश्न (३९६)–कर्मके उदयसे जीव में सचमुच विकार भाव होता है–यह विधान ठीक है ?

उत्तर—(१) नहीं; क्योंकि–“जीवमें होनेवाले विकारभाव वह स्वयं करता है तब कर्मका उदय निमित्त है; किन्तु उन कर्मके रजकणों ने जीव को कुछ भी किया या उसपर असर–(प्रभाव) डाला–ऐसा मानना सर्वथा मिथ्या है (उसीप्रकार जीव विकार करता है तब पुद्गल–कार्माणवर्गणा स्वयं कर्मरूप परिणमित होती है–ऐसा निमित्त–नैमित्तिक सम्बन्ध है।) जीव को विकारीरूप से कर्मका उदय परिणमाता है और नवीन कर्मोंको जीव परिणमाता है यह निमित्त–नैमित्तिक सम्बन्ध बतलानेवाला व्यवहार कथन है। वास्तव में जीव जड़को कर्मरूप परिणमित नहीं कर सकता और कर्म जीवको विकारी नहीं कर सकता–ऐसा समझना। गोम्मटसारादि कर्म शास्त्रों के इस प्रकार अर्थ करना ही न्याय संगत है।”

(स्वा० मंदिर ट्रस्ट से प्रकाशित हिन्दी आवृत्ति मोक्षशास्त्र –अ० १ परि० १, पृष्ठ १४८)

(२) कर्म के उदय से जीव को विकार होता है–ऐसी मान्यता भ्रममूलक है। श्री दीपचन्दजीकृत “आत्मावलोकन” पृष्ठ १४३ में कहा है कि—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

"हे मित्र.......अन्यलोक, स्वाँग (पुद्गलकर्म), स्कंध, परज्ञेय द्रव्यों का दोष न देख और ऐसा न जान कि "परज्ञेय की संनिधि (निकटता) निमित्तमात्र देखकर उसने (निमित्तने) मेरा द्रव्य मलिन (विकार युक्त) किया।" जीव स्वयं ऐसा झूठा भ्रम करता है, परन्तु उन परज्ञेयों से कभी तेरी भेंट (स्पर्श) भी नहीं हुई है; तथापि तू उनका दोष देखता है–जानता है यह तेरा हरामजादीपना है। एक तू उनका ही झूठा है, उनका कोई दोष नहीं है; वे तो सदैव सच्चे हैं।"

प्रश्न (३६७)–जब कर्मों का तीव्र उदय हो तब पुरुषार्थ नहीं हो सकता; ऊपरी गुणस्थानों से भी जीव नीचे गिर जाता है–ऐसे कथन का क्या अर्थ है ?

उत्तर—(१) यह व्यवहारनय का कथन है। जीव में ऐसी योग्यता हो तब कैसा निमित्त होता है उसका ज्ञान कराने के लिये वह कथन है।

(२) जीव जब स्वयं अपने विपरीत पुरुषार्थ से तीव्र दोष करता है तभी कर्म के उदय को तीव्र उदय कहा जाता है, किन्तु यदि जीव यथार्थ पुरुषार्थ करे तो कर्म का चाहे जैसा उदय होने पर भी उसे निर्जरा कहा जाता है। कर्मोदय के कारण जीव गिरता ही नहीं।

(३) प्रवचनसार गाथा ४५ की टीका में श्री जयसेनाचार्य कहते हैं कि–"द्रव्य मोह का उदय होने पर भी यदि शुद्ध आत्मभावना के बल से मोहभावरूप परिणमित न हो तो बंध नहीं होता। पुनश्च, कर्म के उदयमात्र से बंध नहीं होता, यदि उदयमात्र से बंध होता हो तो संसारी को सर्वदा ही कर्म का उदय विद्यमान होने से सदैव ही बंध होता रहेगा; मोक्ष कभी होगा ही नहीं।"

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(४) "द्रव्यकर्मरूप प्रत्ययों (-आस्रवों) का विद्यमानपना होने पर भी यदि जीव रागादिभाव न करे तो बँधता नहीं है। यदि रागादिके अभाव में द्रव्यप्रत्यय के उदयमात्र से जीव को बंध हो तो सर्वदा बंधन चालू ही रहेगा, क्योंकि संसारी को सर्वदा कर्मोदय विद्यमान होता है।"

("पंचास्तिकाय" गाथा १४९ से श्री जयसेनाचार्यकृत सं० टीका)

प्रश्न (३९८)–परिणमन में (कार्य में) उपादान और निमित्त–यह दोनों कारण होते हैं; तो उस में निमित्तकारण का कार्य क्षेत्र कितना ?

उत्तर– (१) कार्य होने से पूर्व किसी को निमित्त नहीं कहा जाता। कार्यकाल में जो उचित (अनुकूल) संयोगरूप परवस्तु उपस्थित हो उसे निमित्त कारण कहते हैं।

उपादानके विना पर को कार्य का निमित्त नहीं कहा जा सकता; निमित्त तो मात्र किस उपादान ने कार्य किया वह बतलानेवाला व्यंजक है।

(पंचाध्यायी भाग २, गाथा ३५८ के आधार से)

(२) "निमित्त तो साक्षीभूत है: जिस प्रकार दुपहरिया (दोपहर के समय खिलने वाला) फ़ूल को विकासरूप होने में दोपहर के सूर्य का होना साक्षीभूत प्रत्यक्ष अवश्य दिखाई देता है।"

(आत्मावलोकन १–पृष्ठ १०२)

(३) निमित्त परवस्तु है। उपादान को परिणमित होने में उसकी आवश्यकता होती है या नहीं–यह प्रश्न ही नहीं उठता; क्योंकि जब निश्चय कारण–उपादान के कार्यरूप परिणत होने का काल होता है तब निमित्त की उपस्थिति स्वयमेव होती है; वह न हो

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ऐसा कभी नहीं होता।

—इस विषय में श्री पं० फूलचन्दजी सम्पादित तत्त्वार्थसूत्र अध्याय ५, सूत्र ३० की टीका, पृष्ठ २५२ में कहा है कि:—

"......वे (निमित्त) हैं अत: माने गये हैं, इसलिये उनकी आवश्यकता और अनावश्यकता का तो प्रश्न नहीं उठता।"

प्रश्न (३९९)—देह, इन्द्रिय और पाँच इन्द्रियों के विषयों के निकट रहने से ही मनुष्यों को ज्ञान और सुख होता है, इसलिये वे देहादि पदार्थ ज्ञान और सुखके लिये अकिंचित्कर कैसे हो सकते हैं ?

उत्तर—(१) उपादान कारण के आश्रय से—सामर्थ्य से ही निमित्त को हेतु कहा जाता है, किन्तु उपादान के बिना पर को कार्य का निमित्त नहीं कहा जा सकता। निमित्त तो मात्र किस उपादान ने कार्य किया उसे बतलाने वाला (अभिव्यंजक) है।

(देखो, पंचाध्यायी भाग २, गाथा ३५८ के आधार से)

(२) "उपरोक्त कथन का साधक दृष्टान्त यह है कि अग्नि अगर (चन्दन) द्रव्य की गंधका व्यंजक होता है ×××"

(पंचाध्यायी भाग २, गाथा ३५९)

(३) "उसीप्रकार यद्यपि देह इन्द्रिय और उनके विषय किसी स्थान पर ज्ञान और सुख के अभिव्यंजक होते हैं, किन्तु वे स्वयं ज्ञान और सुखरूप नहीं हो सकते।"

(पंचाध्यायी भाग २, गाथा ३६०)

(४) "......जहाँ आत्मा स्वयं सुखरूप परिणमित होता है वहाँ विषय क्या करते हैं ? (प्रवचनसार गाथा ६७)

(५) "अन्य द्रव्य से अन्यद्रव्यके गुण की उत्पत्ति नहीं की जा सकती;

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इसलिये (यह सिद्धान्त है कि) सर्व द्रव्य अपने–अपने स्वभाव से उत्पन्न होते हैं।" (समयसार गाथा ३७२)

इससे सिद्ध होता है कि आत्मा को इन्द्रियजन्य ज्ञान तथा सुख होने में शरीर–इन्द्रियाँ अनुत्पादक होने से अकिंचित्कर हैं।

निमित्त कारण वह कथनमात्र कारण है, वास्तविक कारण नहीं है। सच्चा कारण तो एक उपादान कारण ही है। उसका कथन दो प्रकार से है–निश्चय से और व्यवहार से निश्चय कारण ही सच्चा कारण है, व्यवहार कारण तो मात्र सहचारी पदार्थ का ज्ञान कराने के लिये ही कहा जाता है।

प्रश्न (४००)–जीव को संसार दशा में तो विषय ज्ञान और सुख उत्पन्न करते हैं न ?

उत्तर—(१) "नहीं; जीव संसार और मोक्ष दोनों अवस्थाओं में ज्ञानादि स्वरूपवाला ही है, इसलिये यह आत्मा ही स्वयं ज्ञान अथवा सुखमय होता है।" (पंचाध्यायी भा. २, गाथा ३५२)

(२) "मतिज्ञानादि के समय में जीव ही स्पर्शादि विषयों को विषय करके स्वयं ही उस ज्ञान और सुखमय हो जाता है; इसलिये आत्मा को उस ज्ञान तथा सुख में वे अचेतन (जड़) स्पर्शादि पदार्थ क्या कर सकते हैं ?"

—(पंचाध्यायी भाग २, गाथा ३५३)

(३) "मतिज्ञानादिके उत्पत्ति समय में आत्मा ही उपादान कारण है, तथा देह–इन्द्रियाँ और उनके विषयभूत पदार्थ तो मात्र बाह्य हेतु हैं; इसलिये वे अहेतु समान (अहेतुवत्) हैं।"

(पंचाध्यायी भाग २, गाथा ३५१)

(४) यदि स्पर्शादिक विषय स्वतंत्ररूपसे ज्ञानको उत्पन्न करते

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हों तो उन ज्ञानशून्य घटादिक में भी वे ज्ञान क्यों उत्पन्न नहीं करते ?

(पंचाध्यायी भाग २, गा० ३५४)

(५) यदि ऐसा कहा जाये कि चेतन द्रव्यमें ही किसी जगह वे स्पर्शादिक पदार्थ ज्ञानको उत्पन्न करते हैं; किन्तु यदि आत्मा स्वयं चेतन है तो फिर अचेतन पदार्थोंने उसमें क्या उत्पन्न किया ? अर्थात् कुछ भी नहीं।

(देखो, पंचाध्यायी भाग २ गाथा ३५५)

(६) इसलिये ऐसा निश्चित होता है कि आत्माको ज्ञान और सुख उत्पन्न करने में शरीर, पाँचों इन्द्रियाँ तथा उनके विषयों का अकिंचित्करपना है।

(देखो, पंचाध्यायी भा० २, गा० ३५६)

["जो हेतु कुछ भी न करे वह अकिंचित्कर कहलाता है।"]

(समयसार गाथा २६७ का भावार्थ पृष्ठ ३२८)

प्रश्न (४०१)—अंतरंग कारणसे (उपादान कारणसे) ही कार्य की उत्पत्ति होती है—ऐसा न माना जाये तो क्या दोष आयेगा ?

उत्तर—(१) कार्यकी उत्पत्ति में स्वस्थिति कारण होती है, उसमें अन्य हेतु (कारण) नहीं है। फिर भी "कोई हेतु" है, ऐसा माना जाये तो अनवस्था का दोष आयेगा।

(पंचाध्यायी भा० २, गा० ७६६, पृ० २७६
पं० फूलचन्दजी द्वारा संपादित)

(२) "यहाँ मित्र द्वैत से एक उपादान और दूसरा सहकारी कारण लिया गया है.....वस्तु में कार्यकारीपने की **योग्यता** अन्यवस्तु के निमित्तसे नहीं आती यह तो उसका स्वभाव है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इस पर से यदि किसी वस्तु में कार्यकारीपने की **योग्यता** अन्यवस्तु की सहकारिता से मानी जाये तो उस अन्यवस्तु में ऐसी **योग्यता** उससे भिन्न अन्य वस्तुके निमित्त से मानना पड़ेगी, और इस प्रकार उत्तरोत्तर हेतु–परम्पराकी कल्पना करने से अनवस्था दोष प्राप्त होगा.....''

(श्री पं० फूलचन्दजी सम्पादित पंचाध्यायी भाग १ गाथा ४०२–४०४ का विशेषार्थ)

(३) ''.... सर्व कार्य एकान्त से बाह्य अर्थ की अपेक्षा करके ही उत्पन्न नहीं होते; अन्यथा चावल धान्यके बीज से जव के अंकुर की उत्पत्ति का प्रसंग प्राप्त होगा, किन्तु तीनों काल में किसी क्षेत्रमें ऐसा द्रव्य नहीं है कि जिसके बल से चावल धान्यके बीजको जवके अंकुररूप उत्पन्न करने की शक्ति हो सके। यदि ऐसा होने लगेगा तो अनवस्था दोष प्राप्त होगा, इसलिये **किसी भी स्थान पर (सर्वत्र) अंतरंग कारण से ही कार्यकी उत्पत्ति होती है–ऐसा निश्चय करना चाहिये।''**

(देखो, धवल पुस्तक ६, पृष्ठ १६४)

प्रश्न (४०२)–वस्तु का प्रत्येक परिणमन अपनी योग्यतानुसार ही होता है, यह बात बराबर है ?

उत्तर–(१)हाँ; वास्तवमें कोई भी कार्य होने में या बिगड़ने में उसकी योग्यता ही साक्षात् साधक होती है।

''नन्वेवं बाह्यनिमित्तपेक्षः प्राप्नोतीत्यत्राह। अन्यः पुनर्गुरुविपक्षादिः प्रकृतार्थसमुत्पादभ्रंशयोर्निमित्तमात्रं स्यात्तत्र योग्यतामेव साक्षात् साधकत्वात्।''

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थः—यहाँ ऐसी शंका होती है कि–इसप्रकार तो बाह्य निमित्तों का निराकरण ही हो जायेगा। उसका उत्तर यह है कि–अन्य जो गुरु, शत्रु आदि हैं वे प्रकृत कार्य के उत्पादन में या विध्वंस में सिर्फ निमित्तमात्र हैं। वहाँ **योग्यता में** ही साक्षात् साधकपना है।

(२) "...वैभाविक परिणमन निमित्त सापेक्ष होकर भी वह अपनी इस काल में प्रगट होनेवाली **योग्यतानुसार** ही है।......अपनी योग्यतावश ही जीव संसारी है और अपनी **योग्यतावश** ही वह मुक्त होता हैं। जैसे परिणमन का साधारण कारण होते हुए भी द्रव्य अपने उत्पादव्ययस्वभावके कारण ही परिणमन करता है। काल उसका कुछ प्रेरक नहीं है। आगम में निमित्त विशेष का ज्ञान कराने के लिये ही कर्मका उल्लेख किया गया है। **उसे कुछ प्रेरक कारण नहीं मानना चाहिये।** जीव पराधीन है यह कथन निमित्त विशेष का ज्ञान कराने के लिये ही किया जाता है। तत्त्वतः प्रत्येक परिणमन होता है **अपनी योग्यतानुसार ही।**"

(श्री पं० फूलचन्दजी सम्पादित "पंचाध्यायी"
गा० ६१ से ७० का विशेषार्थ, पृष्ठ १६३)

(३) श्री गोम्मटसार जीवकाण्ड गाथा ५८० की संस्कृत टीका के श्लोक में कहा है कि:—

निमित्तांतरं तत्र योग्यता वस्तुनि स्थिता।
बहिर्निश्चयकालस्तु निश्चितं तत्त्वदर्शिभिः ॥ १ ॥

अर्थ—"उस वस्तु में विद्यमान परिणमनरूप जो **योग्यता** वह

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अंतरंग निमित्त है और उस परिणमन का निश्चयकाल बाह्य निमित्त है–ऐसा तत्त्वदर्शियों ने निश्चय किया है।"

[यहाँ अंतरंग निमित्त का अर्थ उपादान कारण होता है।]

(४) '**योग्यता**' शब्दका उपयोग निम्नोक्त शास्त्रों में किया गया है। उसे पढ़कर योग्यताका सच्चा अर्थ समझने का जिज्ञासुओं से नम्र अनुरोध है:—

१—**प्रवचनसार**–गाथा ४४, १६७, १६८, १६९ टीका।

२—**समयसार**–गाथा १३, २७५, ३१८, ३७३ टीका।

३—**नियमसार**–गाथा ६३ टीका।

४—**पंचास्तिकाय**–गाथा ६४, ६६, ९९ टीका।

५—**इष्टोपदेश**–गाथा ३५ टीका, तथा गाथा २, मूल में–(योग्योपादान–योगेन)

६—**अष्टसहस्री**–श्लोक ८८ टीका–पृष्ठ २५६।

७—**अष्टशती**–श्लोक ८८ टीका–पृष्ठ ४०।

८—**प्रमेयकमलमार्तण्ड**–पृष्ठ १०५–"योग्यता एव शरणम्"

९—**प्रमाणपरीक्षा**–पृष्ठ ५२, पृष्ठ ६७।

१०–**तत्त्वार्थ सूत्र**–अध्याय ८, सूत्र २।

११–**तत्त्वार्थसार**–पृष्ठ ३७, ९५, १६४, १६६, १७६, १८२, १८३, १८४, २८६, ३०५, ३०९–योग्यता एव शरणम्"

१२–**तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक**–पृष्ठ २३०, २४९, संसकृत।

१३–**परीक्षामुख**–द्वितीय अध्याय, सूत्र ९।

१४–**गोम्मटसारकर्मकाण्ड**–गाथा ५२, १९०–२८६।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रश्न (४०३) निमित्तको वास्तव में अकिंचित्कर क्यों कहा ?

उत्तर—(१) "संसारमें या मोक्ष में आत्मा अपने आप सुखरूप परिणमित होता है; उसमें विषय **अकिंचित्कर** हैं अर्थात् कुछ नहीं करते। अज्ञानी लोग विषयों को सुखका कारण मानकर व्यर्थ ही उनका अवलम्बन करते हैं।"—(प्रवचनसार गाथा ६७ का भावार्थ)

(२) "जो हेतु कुछ भी न करे वह **अकिंचित्कर** कहलाता है। (देखो, श्री समयसार गाथा २६७ की टीका) एक द्रव्य का व्यापार दूसरे द्रव्य में होता ही नहीं। उक्त कथन से सिद्ध होता है कि आत्मा को इन्द्रियजन्य ज्ञान और सुख होने में शरीर, इन्द्रियाँ तथा उनके विषय अनुत्पादक होने से **अकिंचित्कर** हैं..."

—(पंचाध्यायी भाग २, गाथा ३५६ का भावार्थ)

(३) "तत्त्वदृष्टि से देखने पर राग–द्वेषको उत्पन्न करने वाला अन्य द्रव्य जरा भी (किंचनापि) दिखलाई नहीं देता।"

—(श्री समयसार कलश २१९)

(४) "इस आत्मा में जो रागद्वेषरूप दोषों की उत्पत्ति होती है वहाँ पर द्रव्यों का कुछ भी दोष नहीं है; वहाँ तो स्वयं अपराधी ऐसा यह अज्ञान ही फैलता है....."

—(श्री समयसार कलश २२०)

(५) "......इसप्रकार अपने स्वरूप से ही जानने वाले ऐसे आत्मा को अपन–अपने स्वभाव से ही परिणमित होनेवाले शब्दादिक **किंचित्मात्र** भी विकार नहीं करते; जिस प्रकार अपने स्वरूप से ही प्रकाशित ऐसे दीपक को घटपटादि पदार्थ विकार नहीं करते उसी प्रकार। ऐसा वस्तु स्वभाव है, तथापि जीव शब्दको

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सुनकर, रूपको देखकर, गंध को सूँघकर, रसका आस्वादनकर, स्पर्शका स्पर्शन कर, गुण द्रव्यको जानकर उन्हें **अच्छा--बुरा** मानकर राग द्वेष करते हैं वह अज्ञान ही है ।"

—(श्री समयसार गाथा ३७३ से ३८२ का भावार्थ)

(६) "......वस्तुस्वभाव पर के द्वारा उत्पन्न नहीं किया जा सकता इसलिये, तथा वस्तुस्वभाव पर को उत्पन्न नहीं करसकता इसलिये, आत्मा जिस प्रकार बाह्य पदार्थों की असमीपता में (अपने स्वरूप से ही जानता है) उसी प्रकार बाह्य पदार्थों की समीपता में भी अपने स्वरूप से ही जानता है । (इसप्रकार) अपने स्वरूप से ही जाननेवाले उस (आत्माको), वस्तुस्वभाव से ही विचित्र परिणति को प्राप्त ऐसे मनोहर या अमनोहर शब्दादि **बाह्य पदार्थ किंचित् विक्रिया उत्पन्न नहीं करते ।"**

(-श्री समयसार गाथा ३७३ से ३८२ की टीका)

प्रश्न (४०४)—निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध कब कहा जाता है ?

उत्तर—जिस समय वस्तु कार्यरूप परिणमित हो अर्थात् उपादान में कार्य हो उसी समय संयोगरूप परवस्तु को निमित्त कहा जाता है । यदि कार्य न हो तो किसी सामग्री को निमित्तकारण नहीं कहा जाता; क्योंकि कार्य होने से पूर्व निमित्त किसका ? कार्य–कारण का समय एक ही होता है । निमित्त–नैमित्तिक सम्बन्ध एक समय की वर्तमान पर्याय में ही होता है ।

प्रश्न–(४०५)—निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध दृष्टान्त देकर समझाइये ।

उत्तर—(१) केवलज्ञान नैमित्तिक है और लोकालोकरूप समस्त ज्ञेय निमित्त हैं । [प्रवचनसार गाथा २६ की टीका]

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

[२] सम्यग्दर्शन नैमित्तिक है और सम्यग्ज्ञानी के उपदेशादि निमित्त हैं। —[आत्मानुशासन गाथा १० की टीका]

[३] सिद्धदशा नैमित्तिक है और पुद्गल कर्म का अभाव निमित्त है। —[समयसार गाथा ८३ की टीका]

[४] "जिस प्रकार अधःकर्म से उत्पन्न हुआ और उद्देश से उत्पन्न हुआ ऐसा जो निमित्तभूत [आहारादि] पुद्गल द्रव्य का प्रत्याख्यान [त्याग] न करता हुआ आत्मा [मुनि] नैमित्तिक-भूत बंध साधक भाव का प्रत्याख्यान नहीं करता, उसीप्रकार समस्त पर द्रव्यों का प्रत्याख्यान न करता हुआ आत्मा उसके निमित्त से होने वाले भावों को नहीं त्यागता।"

[समयसार गाथा २८६–८७ की टीका]

इसमें बंध साधक भाव नैमित्तिक है और अधःकर्म तथा उद्देशिक आहारादि परद्रव्य निमित्त हैं।

१—"जिस पापकर्म से आहार उत्पन्न होता है उस पापकर्मको **अधः कर्म** कहा जाता है तथा उस आहार को भी अधःकर्म कहा है। जो आहार ग्रहण करने वाले के निमित्त से ही बनाया गया हो उसे **उद्देशिक** कहा जाता है। ऐसे आहार (अधःकर्म और उद्देशिक) के निमित्त से आत्मा के जो भाव होते हैं वे नैमित्तिक बंधसाधक भाव हैं।

२—**निमित्त--नैमित्तिक सम्बन्ध मात्र कर्म और जीव के बीच ही होता है यह बात यथार्थ नहीं है;** कारण बतलाना हों तब उपादानकारण और निमित्तकारण कहे जाते हैं।

३—निमित्त कारण और उसके साथ का सम्बन्ध बतलाना हो

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तब उपादान का कार्य (निमित्त अपेक्षा से) नैमित्तिक कह-
लाता है।

प्रश्न (४०६)–"गुरु उपदेश निमित्त बिन, उपादान बलहीन;
ज्यों नर दूजे पाँव बिन, चलवे को आधीन।"
(बनारसी विलास

अर्थः—गुरु के उपदेशरूप निमित्त बिना उपादान (शिष्यादि
बलहीन हैं; (क्योंकि) दूसरे पाँव के बिना मनुष्य चल सकता है
[यह मान्यता बराबर है ?–ऐसा शिष्य का प्रश्न है।]

उत्तर—यह मान्यता बराबर नहीं है–ऐसा बतलाने के लिये श्री गु
दोहे से उत्तर देते हैं किः—

(१) "ज्ञान नैन किरिया चरन, दोऊ शिवमग धार;
उपादान निहचै जहाँ, तहाँ निमित्त व्योहार।"
(बनारसी विलास

अर्थः—सम्यग्दर्शन–ज्ञानरूप नेत्र और स्थिरतारूप चरण (अर्था
लीनतारूप क्रिया)–यह दोनों मिलकर मोक्षमार्ग जानो। **जहाँ उपा-
दानरूप निश्चय कारण होता है वहाँ निमित्तरूप व्यवहार कार
होता ही है।**

भावार्थः—उपादान तो निश्चय अर्थात् सच्चा कारण है; निमित्त
तो मात्र व्यवहार अर्थात् उपचार कारण है, सच्चा कारण नहीं है
इसीलिये तो उसे अकारणवत् (अहेतुवत्) कहा है। उसे उपचार
(आरोपित) कारण इसलिये कहा है कि वह उपादान का कुछ
कार्य करता–कराता नहीं है; तथापि कार्य के समय उसपर अनुकूलता
का आरोप आता है; इसकारण उसे उपचारमात्र कहा है।

[सम्यग्ज्ञान और चारित्ररूप लीनता को मोक्षमार्ग जानो–ऐसा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कहा उसमें शरीराश्रित उपदेश, उपवासादिक क्रिया और शुभरागरूप व्यवहारको मोक्षमार्ग न जानो यह बात आ जाती है।]

(२) "उपादान निजगुण जहाँ, तहँ निमित्त पर होय;
भेदज्ञान परवान विधि, विरला बूझै कोय।"
(बनारसी विलास)

अर्थ:—जहाँ **निजशक्तिरूप उपादान हो वहाँ पर निमित्त** होता ही है। उसके द्वारा भेदज्ञान प्रमाणकी विधि (व्यवस्था) है। यह सिद्धान्त कोई विरले ही समझते हैं।

भावार्थ:—जहाँ उपादान की योग्यता हो वहाँ नियमसे निमित्त होता ही है। निमित्त की प्रतीक्षा करना पड़े ऐसा नहीं होता, और निमित्त को हम जुटा सकते हैं—ऐसा भी नहीं होता। निमित्त की प्रतीक्षा करना पड़ती है या उसे मैं ला सकता हूँ—ऐसी मान्यता पर-पदार्थ में अभेदबुद्धि अर्थात् अज्ञानसूचक है। उपादान और निमित्त दोनों असहायरूप स्वतंत्र हैं यह उनकी मर्यादा है।

(३) "उपादान बल जहँ तहाँ, नहिं निमित्त को दाव;
एक चक्र सौं रथ चलै, रवि को यहै स्वभाव।"
(बनारसी विलास)

अर्थ:-जहाँ देखो वहाँ उपादानका ही बल है; (निमित्त होता है) परन्तु निमित्त का (कार्य करने में) कोई भी दाव (बल) नहीं है। एक चक्र से रवि (सूर्य) का रथ चलता है वह उसका स्वभाव है।

[उसी प्रकार प्रत्येक कार्य उपादानकी योग्यतासे (सामर्थ्यसे) ही होता है।]

प्रश्न (४०७)—"हौं जानै था एक ही, उपादान सों काज,
थकै सहाई पौन बिन, पानी मांहि जहाज।"
(बनारसी विलास)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ:—अकेले उपादानसे कार्य होता हो तो **पवन की सहायता के बिना** जहाज पानी में क्यों नहीं चलता ?

उत्तर—(१) "सधै वस्तु असहाय जहँ तहँ निमित्त है कौन;
ज्यों जहाज परवाह में, तिरै सहज बिन पौन।"
(बनारसी विलास)

अर्थ:—जहाँ प्रत्येक वस्तु स्वतंत्ररूपसे अपनी अवस्था को (कार्यको प्राप्त करता है वहाँ निमित्त कौन है ? जिसप्रकार जहाज प्रवाह में सहज ही बिना पवन के तरता है।

भावार्थ:—जीव और पुद्गल द्रव्य शुद्ध या अशुद्ध अवस्था में स्वतंत्ररूपसे ही अपने में परिणमन करते हैं। अज्ञानी जीव भी स्वतंत्र रूपसे निमित्ताधीन होकर परिणमन करता है; कोई निमित्त उसे आधीन नहीं कर सकता।

(२) "उपादान विधि निर्वचन, है निमित्त उपदेश;
बसे जु जैसे देश में, करै सु तैसे भेष।"

विशेषार्थ:—उपादानका कथन निर्वचन (अर्थात् एक "योग्यता" द्वारा ही होता है) है; उपादान अपनी योग्यता से अनेक प्रकार से परिणमन करता है; तब उपस्थित निमित्त पर भिन्न-भिन्न कारणपने का आरोप (—भेष) आता है; उपादान की विधि निर्वचन होने से निमित्त द्वारा यह कार्य हुआ—ऐसा व्यवहारसे कहा जाता है।

भावार्थ:—उपादान जब जैसा कार्य करता है तब वैसे कारणपने का आरोप (भेष) निमित्तपर आता है; जैसे कि—कोई वज्रकायवान मनुष्य सातवें नर्कगतिके योग्य मलिन भाव धारण करता है तो वज्रकाय पर नर्क के कारणपनेका आरोप आता है; और यदि जीव मोक्षके योग्य निर्मल भाव करता है तो उस वज्रकाय पर मोक्ष-कारणपनेका आरोप आता है। —इसप्रकार उपादानके कार्य अनुसार

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

निमित्तमें कारणपने का भिन्न-भिन्न आरोप किया जाता है। इससे ऐसा सिद्ध होता है कि निमित्तसे कार्य नहीं होता परन्तु कथन होता है; इसलिये उपादान सच्चा कारण है और निमित्त आरोपित कारण है।

वास्तव में तो, निमित्त ऐसा प्रसिद्ध करता है कि—नैमित्तिक स्वतंत्र अपने कारणसे परिणमन कर रहा है, तो उपस्थित दूसरी अनुकूल वस्तु को निमित्त कहा जाता है।

प्रश्न (४०८)—निमित्तके बिना कार्य होता है ?

उत्तर—(१) निश्चयसे तो निमित्त के बिना ही सर्वत्र स्वयं उपादान की योग्यता से ही कार्य होता है; उस काल उचित निमित्त होता है यह व्यवहार कथन है।

नियम ऐसा है कि—**निश्चय से उपादानके बिना कोई कार्य नहीं होता।** कार्य वह पर्याय है, और निश्चयसे वह परसे (निमित्तसे) निरपेक्ष होती है।

[देखो, १—समयसार गाथा ३०८ से ११ तथा उसकी संस्कृत टीका। २—पंचास्तिकाय गाथा ६२ सं० टीका। ३—बनारसीदासजी के उपादान-निमित्त दोहे; नंबर ४-५-६। ४—प्रवचनसार गाथा १०० की जयसेनाचार्यकृत टीका अध्याय २, गाथा ८, पृष्ठ १३६; तथा प्रवचनसार गा० १६० और उसकी अमृतचन्द्राचार्यकृत टीका]

(२) निमित्त व्यवहारकारण है—ऐसा न माननेवाले को "निमित्त के बिना कार्य नहीं होता"—ऐसा बतलाया जाता है; किन्तु व्यवहारके कथनों को निश्चयके कथन समझना वह भूल है।

[देखो, समयसार गाथा ३२४-३२७ तथा टीका]

३—ऐसा नहीं है कि कभी कार्य के लिये निमित्तकी प्रतीक्षा करना पड़े, अथवा निमित्त मिलाना पड़ें, अथवा निमित्त है इसलिये उपादान में कार्य होता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(४) प्रतिसमय उपादानमें निश्चित् कार्य होता है और उसकाल निमित्त भी निश्चित् होता ही है।

(५) प्रत्येक द्रव्य अनादिसे अनंतकाल प्रतिसमय परिणमन करता ही है; वह परिणाम स्वयं कार्य है, और प्रत्येक समय के कार्य के लिये उपादान और निमित्त कारण अर्थात् उपादानरूप उत्पादक सामग्री और निमित्तरूप उत्पादक सामग्री होती ही है। किसी समय वह न हो ऐसा होता ही नहीं।

[देखो, प्रकरण पाँचवाँ–प्रश्न ३६३]

प्रश्न (४०९)–पुद्गल कर्मकी बलजवरीसे जीव में राग–द्वेष के परिणाम होते हैं–यह ठीक है ?

उत्तर—(१) नहीं; श्री "समयसार नाटक" में ऐसा प्रश्न करके उसका निम्नानुसार समाधान किया है:—

"कोऊ मूरख यों कहै, राग दोष परिनाम:
पुग्गल की जोरावरी, वरतै आतमराम।
ज्यों ज्यों पुग्गल बल करै, धरि धरि कर्मज भेष;
रागदोषकौ परिनमन, त्यों त्यों होय विशेष।"

अर्थ:—कोई–कोई मूर्ख ऐसा कहते हैं कि आत्मा में राग–द्वेष के भाव पुद्गल की बलजवरीसे होते हैं। वे कहते हैं कि–पुद्गल, कर्मरूप परिणमन के उदय में जैसा–जैसा बल करता है वैसी–वैसी बाहुल्यता से रागद्वेष के परिणाम होते हैं।

"इहि विधि जो विपरीत पख, गहै सद्दहै कोइ;
सो नर राग विरोध सौं, कबहूँ भिन्न न होइ।
सुगुरु कहैं जग में रहै, पुग्गल संग सदीव;
सहज सुद्ध परिनमनिकौ, अवसर लहै न जीव।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तातें चिद्भावनि विषै, समरथ चेतन राउ,
राग–विरोध मिथ्यात में, समकित में सिव भाउ।"

(समयसार नाटक पृ० ३५३)

अर्थ:—इसप्रकार कोई मनुष्य विपरीत पक्ष ग्रहण करके श्रद्धान करता है कि वह राग विरोधरूप भावों से कभी भिन्न हो ही नहीं सकता। सद्गुरु कहते हैं कि–पुद्गलके संयोगसे रागादि नहीं है, यदि हो तो जगत में पुद्गलका संग सदैव है तो जीव को सहज शुद्ध परिणाम करने का अवसर ही नहीं मिलेगा, इसलिये अपने (शुद्ध या अशुद्ध) चैतन्य परिणाम में चेतनराजा ही समर्थ है। राग–विरोधरूप परिणाम अपने मिथ्यात्व भाव में हैं, और अपने सम्यक्त्व परिणाम में शिव–भाव अर्थात् ज्ञान–दर्शन–सुख आदि उत्पन्न होते हैं।

(२) "अविद्या जड़ लघुशक्तिसे तेरी महान् शक्ति का घात नहीं हो सकता; परन्तु तेरी शुद्ध शक्ति भी बड़ी, तेरी अशुद्ध शक्ति भी बड़ी; तेरा (विपरीत) चितवन तेरे गले पड़ा और उससे परको देखकर आतमा भूला; **यह अविद्या तेरी ही फैलाई हुई है; तू अविद्यारूप कर्म में न पड़ कर स्व को न जोड़े तो जड़ का कुछ जोर नहीं है; इसलिये अपरंपार शक्ति तेरी है....'**

—(श्री दीपचन्दजीकृत " अनुभव प्रकाश")

प्रश्न (४१०)–संज्ञी पंचेन्द्रियपना, मनुष्यपना, कर्म का मंद उदय, सम्यग्ज्ञानीका उपदेश–आदि निमित्तों के बिना वास्तव में मोक्ष-मार्ग प्रगट होता है ?

उत्तर—१–हाँ, क्योंकि प्रत्येक द्रव्यके द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव अपने रूपसे हैं और पररूपसे नहीं हैं इसलिये एक द्रव्य को

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दूसरे द्रव्यकी आवश्यकता होती ही नहीं। जहाँ निश्चयकारण—उपादानकारण—होता है वहाँ व्यवहारकारण—निमित्तकारण होता ही है।

२—जीव निज शुद्ध ज्ञाता—दृष्टा स्वभावकी रुचि और उसमें लीनतारूप पुरुषार्थ न करे तबतक किसी पदार्थ पर निमित्तपने का आरोप नहीं आता। जब जीव अपने में धर्म अवस्था प्रगट करे तब उसके लिये उचित (अनुकूल) बाह्य पदार्थों पर निमित्तपनेका आरोप आता है।

३—निश्चयनय से तो निमित्तके बिना उपादानमें स्व से ही कार्य होता है, किन्तु उसकाल कैसे निमित्त होते हैं उनका ज्ञान कराने के लिये निमित्तके बिना कार्य नहीं होता—ऐसा व्यवहारनयका कथन होता है।

४—"जिनमार्ग में कहीं तो निश्चयनयकी मुख्यता सहित व्याख्यान है; उसे तो "सत्यार्थ ऐसा ही है"—ऐसा जानना चाहिये; तथा कहीं व्यवहारनय की मुख्यता सहित व्याख्यान है उसे **"ऐसा नहीं है किन्तु निमित्तादि की अपेक्षा से यह उपचार किया है"**—ऐसा जानना चाहिये....."

(देहली से प्रकाशित श्री मोक्षमार्ग प्रकाशक पृष्ठ ३६९)

५—इस सम्बन्ध में श्री भगवतीदासजी ने "ब्रह्मविलास" पृष्ठ २३३ पर निमित्त-उपादान के संवाद रूप में कहा है कि—

निमित्त:—"देव जिनेश्वर गुरु यति, अरु जिन आगमसार,
इहि निमित्ततैं जीव सब, पावत हैं भवपार।"

उपादान:—यह निमित्त इह जीवको, मिल्यो अनंती वार,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उपादान पलटचो नहीं, तौ भटक्यो संसार।"

निमित्त—"कै केवली कै साधु कै, निकट भव्य जो होय,
सो क्षायिक सम्यक् लहै, यह निमित्त बल जोय।"

उपादान:—"केवली अरु मुनिराज के, पास रहैं बहु लोय,
पै जाको सुलटचो धनी, क्षायिक ताको होय।"

—इससे समझमें आता है कि निमित्त तो जीवको पूर्व अनंतवार मिले हैं, किन्तु अपने क्षणिक उपादान कारण बिना वह मोक्षमार्ग प्राप्त नहीं कर सका और इसलिये संसार-वन में भटक रहा है।

प्रश्न (४११)—निमित्त भले ही कुछ न करे, किन्तु निमित्तके बिना तो उपादान में कार्य नहीं होता ?

उत्तर—१—"निमित्त बिना.......कार्य नहीं होता"—यह व्यवहार नय का कथन है। उसका अर्थ यह है कि—"ऐसा नहीं है।" किन्तु निमित्तका ज्ञान कराने के लिये वैसा कहा जाता है, क्योंकि प्रतिसमय के उत्पाद (कार्य) के समय उचित बहिरंग साधनों की (निमितों की) संनिधि (उपस्थिति-निकटता) होती ही है। उसका आधार यह है कि:—

"....जो उचित बहिरंग साधनों की संनिधिके सद्भाव में अनेकप्रकार की अनेक अवस्थाएँ करता है......."

—(श्री प्रवचनसार गाथा ९५ की टीका)

२—यहाँ आशय इतना ही है कि जहाँ कार्य हो, वहाँ उचित निमित्त होता ही है, न हो ऐसा नहीं होता।

३—जगत में प्रत्येक द्रव्य में प्रति समय परिणमन हो ही रहा है और कार्यको अनुकूल निमित्त भी सदैव प्रतिसमय होता है; तो फिर "निमित्तके कारण कार्य हुआ," "निमित्त न होतो कार्य नहीं होता"—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इत्यादितर्कों का अवकाश ही कहाँ रहा ? कार्य की उत्पत्ति और उचित निमित्तकी उपस्थिति के बीच सूक्ष्मदृष्टि से समयभेद है ही नहीं।

४–निमित्तका अस्तित्व नैमित्तिक कार्य को प्रगट करता है, न कि उस कार्य की पराधीनता सूचित करता है।

५–उपादान में कार्य हो तभी उचित बहिरंग साधन "निमित्त" नाम प्राप्त करता है, इसके बिना वह निमित्त नहीं कहलाता।

६–निमित्त पर होने से वह उपादान में मिलकर या दूर रहकर उसे मदद, असर, सहायता, प्रभाव, प्रेरणा या आधार नहीं दे सकता; क्योंकि उसका उपादान में अत्यन्त अभाव है।

७–प्रतिसमय प्रत्येक द्रव्य त्रिस्वभावस्पर्शी (अर्थात् उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य—इन तीन स्वभावयुक्त) होता है और कार्य के उत्पाद के समय बहिरंग साधनों (निमित्त) की उपस्थिति होती ही है। (देखो श्री प्रवचनसार गाथा १०२ की टीका) इससे सिद्ध होता है कि उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य और बहिरंग साधनों (निमित्त) का समय एक ही होता है। ऐसा स्वाभाविक नियम ही है, इसलिये कार्य की उत्पत्ति के समय उचित निमित्त होता ही है; इसलिये निमित्तकी उपस्थिति–अनुपस्थिति का या उसकी प्रतीक्षा करने का प्रश्न ही नहीं रहता।

८–निमित्त के बिना उपादान बलहीन है और निमित्त की सहायता के बिना कार्य नहीं होता–ऐसे दो प्रश्न उपस्थित करके पं० बनारसीदासजी ने स्व-रचित दोहों द्वारा स्पष्टीकरण करते हुए कहा है कि यह मान्यता यथार्थ नहीं है:—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(१) जहाँ उपादान निश्चय होता है वहाँ निमित्त व्यवहार होता ही है।

(२) जहाँ उपादान निजगुण हो वहाँ निमित्त पर होता ही है।

(३) जहाँ देखो वहाँ उपादान का ही बल है, निमित्त का दाव कभी भी नहीं है।

(४) जहाँ प्रत्येक वस्तु असहाय (स्वतंत्ररूप से) सधती है (परिणमित होती है), वहाँ निमित्त कौन हैं ?

[यह दोहे जिज्ञासुओं को अवश्य समझने योग्य हैं।]

प्रश्न (४१२)–निमित्त उपादान को कुछ नहीं कर सकता, तो शरीर में सुई चुभ जाने से जीव को दु.ख क्यों होता है ?

उत्तर—१–जीव सदैव अरूपी होने से उसे सुई का स्पर्श नहीं हो सकता। एक आकाश क्षेत्र में सुई का संयोग हुआ वह दुःखका कारण नहीं है किन्तु अज्ञानी जीव को शरीरकी अवस्था के साथ एकत्व–ममत्वबुद्धि होती है इसलिये उसे जो दुःख होता है वह शरीर में सुई चुभने के कारण नहीं किन्तु उस प्रसंग पर प्रतिकूलता की मिथ्या कल्पना से होता है।

२–ज्ञानी को निचली दशा में जो अल्प राग है वह शरीर के साथ एकत्व बुद्धि का राग नहीं है; अपनी क्षणिक निर्बलता के कारण, उसे जितना राग है उतना दुःख होता है। सुई के कारण ज्ञानी या अज्ञानी किसी को दुःख नहीं होता। ज्ञानी अल्प दु:ख रूप विकार का ज्ञाता ही है, किन्तु उसका स्वामी नहीं है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अज्ञानी पर के साथ एकत्वबुद्धि करके विकार का स्वामी बनकर दुःखी होता है।

३–"......सामग्री के आधीन सुख–दुःख नहीं है किन्तु साता–असाता का उदय होने पर मोह परिणामों के निमित्त से ही सुख–दुःख मानते हैं।"

"......मुनिजन शारीरिक पीड़ा होने पर भी उसमें कोई दुःख नहीं मानते, इसलिये सुख–दुःख मानना मोह के ही आधीन है। मोहनीय और वेदनीयका निमित्त–नैमित्तिक सम्बन्ध है, इसलिये साता–असाता के उदय से सुख–दुःख का होना भासित होता है।"

"......केवली भगवान् के साता–असाता का उदय होने पर सुख–दुःख के कारण सामग्री का भी संयोग है, परन्तु मोहके अभाव से उन्हें किंचित् मात्र भी सुख–दुःख नहीं होता; इसलिये सुख–दुःख को मोह जनित ही मानना। इसलिये तू सामग्री को (निमित्तको) दूर करने तथा स्थायी रखने के उपाय करके दुःख मिटाना और सुखी होना चाहता है, किन्तु वे सभी उपाय झूठे हैं; तो फिर सच्चा उपाय क्या है? सम्यग्दर्शनादिक से भ्रम दूर हो जाये तो सामग्री से सुख–दुःख भासित न होकर अपने परिणाम से ही सुख–दुःख भासित हो......"

—(श्री मोक्षमार्ग प्रकाशक गुजराती आवृत्ति, पृष्ठ ८७)

प्रश्न (४१३)–निमित्त प्राप्त करके उपादान परिणमित होता है–इस कथन का क्या अर्थ?

उत्तर—१–"जो गुणों को और पर्यायों को पाते–प्राप्त करते–पहुँचते हैं......ऐसे "अर्थ" वे द्रव्य हैं; जो द्रव्यों को आश्रयरूप से

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पाते–प्राप्त करते–पहुँचते हैं.....ऐसे "अर्थ" वे गुण हैं; जो द्रव्यों को क्रम–परिणाम से पाते–प्राप्त करते–पहुँचते हैं....ऐसे "अर्थ" वे पर्यायें हैं।"

(प्रवचनसार गाथा ८७ की टीका)

२–"उपादान निमित्त को पाकर परिणमित होता है"–यह कथन व्यवहारनय का है। यह मात्र निमित्तका ज्ञान कराने के लिये है। उपादान कभी भी वास्तव में निमित्त को प्राप्त नहीं करता, इसलिये "किसी स्थान पर व्यवहार नय की मुख्यता सहित व्याख्यान है उसे 'ऐसा नहीं है किन्तु निमित्तादि की अपेक्षा से यह उपचार किया है'–ऐसा जानना चाहिये।"

—(देहली से प्र० मोक्षमार्ग प्रकाशक पृष्ठ ३६९)

३–"......उसी प्रकार जिसने पूर्व अवस्था प्राप्त की है ऐसा द्रव्य भी–कि जो उचित बहिरंग साधनों की संनिधि के सद्भाव में अनेक प्रकार की अनेक अवस्थाएँ करता है वह–अंतरंग साधनभूत स्वरूप कर्ता के और स्वरूप कारण के सामर्थ्यरूप स्वभाव द्वारा अनुग्रहीत होने पर, उत्तर अवस्थारूप उत्पन्न होता हुआ उस उत्पाद द्वारा लक्षित होता है....."

—(श्री प्रवचनसार गाथा ९५ की टीका)

इसप्रकार प्रति समय के उत्पाद (कार्य) के समय उचित बहिरंग साधनों की (कर्मादि निमित्तों की) संनिधि (उपस्थिति–निकटता) होती ही है–ऐसा यहाँ बतलाया है।

४"....ऐसा होने से, सर्व द्रव्यों को, निमित्तभूत अन्य द्रव्य अपने (अर्थात् सर्व द्रव्यों के) परिणाम के उत्पादक हैं ही नहीं; सर्व द्रव्य ही निमित्तभूत अन्य द्रव्यों के स्वभाव का स्पर्श न

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

करते हुए, अपने स्वभाव से अपने परिणाम भावरूप उत्पन्न होते हैं।" (श्री समयसार गाथा ३७२ की टीका)

५....लोक में सर्वत्र जो भी जितने-जितने पदार्थ हैं वे सब निश्चय से (निश्चित्) एकत्व निश्चय को प्राप्त होने से ही सुन्दरता प्राप्त करते हैं; क्योंकि अन्य प्रकार से उनमें संकर, व्यतिकर आदि सर्व दोष आ पड़ेंगे। कैसे हैं वे सर्व पदार्थ ? अपने द्रव्यमें अन्तर्मग्न रहा हुआ अपने अनंत धर्मों के चक्र को(समूहको) चुम्बते हैं-स्पर्श करते हैं, फिर भी जो परस्पर एक-दूसरे को स्पर्श नहीं करते....."

(श्री समयसार गाथा ३ की टीका)

प्रश्न (४१४)-सम्यग्दृष्टि जीवों का अभिप्राय नर्क में जाने का नहीं होता; तथापि कोई सम्यग्दृष्टि नर्क में जाता है तो वहाँ जड़ कर्म का जोर है, और जड़ कर्म जीव को नर्क में ले जाता है इसलिये जाना पड़ता है-यह बात यथार्थ है या नहीं ?

उत्तर—१-यह बातयथार्थनहीं है; एक द्रव्य दूसरे द्रव्यका कुछ नहीं कर सकता, इसलियेजड़कर्म जीवकोनरकमेंलेजाताहै-ऐसानहींहोता।

२-सम्यग्दृष्टि या मिथ्यादृष्टि कोई जीव नरक में नहीं जाना चाहते; तथापि जो-जो जीव नरक क्षेत्र में जाने योग्य हों वे-वे जीव अपनी क्रियावती शक्ति के परिणमन के कारण वहाँ जाते हैं। उस समय कार्माण और तैजस शरीर भी उनकी अपनी (पुद्गलपरमाणुओं की) क्रियावती शक्ति के परिणमन के कारण जीव के साथ उस क्षेत्र में जाते हैं।

३-और अभिप्राय तो श्रद्धागुण की पर्याय है तथा इच्छा वह चारित्रगुण की विकारी पर्याय है। द्रव्य का प्रत्येक गुण

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्वतंत्र और असहाय है; इसलिये जीवकी इच्छा या अभिप्राय चाहे जिसप्रकार के होने पर भी उसकी क्रियावती शक्ति का परिणमन उनसे (अभिप्राय या इच्छा से) स्वतंत्ररूपसे उस समय की उस पर्याय के धर्मानुसार होता है.....

(४) नरकगति के भवका बंध अपने पुरुषार्थ के दोष से हुआ था, इसलिये योग्य समय में उसके फलरूपसे जीवकी अपनी योग्यताके कारण नारकी का क्षेत्र संयोगरूपसे होता है; कर्म उसे नरक में नहीं ले जाता। कर्म के कारण जीव नरक में जाता है—ऐसा कहना तो मात्र उपचार कथन है। जीवका कर्म के साथ निमित्त—नैमित्तिक सम्बन्ध बतलाने के लिये शास्त्रों में वह कथन किया है; परन्तु वास्तव में जड़कर्म जीव को नरक में लेजाता है—ऐसा बतलाने के लिये नहीं किया।

(स्वा० मं० ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित हिन्दी आवृत्ति मोक्षशास्त्र अ० ३, सूत्र ६ की टीका पृ० ३०७)

प्रश्न (४१५)—उपादान और निमित्त कारणों को अन्य किन नामों से कहा जाता है ?

उत्तर—(१) उपादानको अंतरंग कारण और निमित्तको बहिरंगकारण कहते हैं।

(२) उपादानको अनुपचार (निश्चय) और निमित्तको उपचार (व्यवहार) कारण कहा जाता है।

(३) निमित्त कारणको सहकारी कारण भी कहा जाता है।

प्रश्न (४१६)—निमित्तकारणों में कौन—कौन से भेद पड़ते हैं ?

उत्तर—अनेक निमित्तकारणों में जो मुख्य निमित्त हो उसे अंतरंग (निमित्त) कारण कहा जाता है और गौण निमित्त हो उसे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बहिरंग (निमित्त) कारण कहा जाता है। उसके दृष्टान्तः—

(१) कर्म बंधनके लिये आत्माके योगको बहिरंग (निमित्त) कारण और जीव के रागादिभावको अंतरंग (निमित्त) कारण कहते हैं। (देखो, पंचास्तिकाय गा० १४८ की टीका)

(२) ....“और व्रत, दानादिक तो कषाय कम करने के **बाह्य निमित्त साधन** हैं और करणानुयोग का अभ्यास करने से वहाँ उपयोग लग जाये तब रागादिक दूर होते हैं इसलिये वह **अंतरंग निमित्त साधन है.....**”

(दे० प्र० मोक्षमार्ग प्रकाशक पृष्ठ ४२७)

(३)“....इस सम्यक्त्व परिणाम का बाह्य सहकारी कारण वीत-राग-सर्वज्ञ के मुखकमल से निकला हुआ समस्त वस्तु के प्रति-पादन में समर्थ ऐसा द्रव्यश्रुतरूप तत्त्वज्ञान ही है। जो मुमुक्षु हैं उनको भी **उपचार से** पदार्थ निर्णय के हेतुपने के कारण (सम्यक्त्व परिणामका) **अंतरंग हेतु** कहा है, क्योंकि उनको दर्शन मोहनीय कर्म के क्षयादिक हैं।”

(नियमसार गाथा ५१ से ५५ की टीका)

(४) “किसी पुरुष को बंधनका **अंतरंग निमित्त** कर्म है, बंधनका **बहिरंग हेतु** किसी का काय व्यापार है; छेदन का भी **अंतरंग (निमित्त) कारण** कर्मोदय है; **बहिरंग कारण** प्रमत्तजीवकी काय क्रिया है; मरणका भी **अंतरंग (निमित्त) हेतु** आंतरिक (निकट) सम्बन्ध का (आयुष्यका) क्षय है; **बहिरंग कारण** किसी की कायविकृति है.....”

(नियमसार गा० ६८ की टीका)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रश्न (४१७)–उत्पादन कारण किसे कहते हैं ?

उत्तर—"उत्पत्ति के कारण को उत्पादन कारण कहते हैं। **द्रव्योंकी ध्रुवता तथा पूर्व पर्यायका व्यय वह उत्पादन कारण है।** यदि ऐसा न जाये तो......"केवल सर्ग (उत्पाद) शोधने वाले कुम्भकी (व्यय और ध्रौव्यसे पृथक् मात्र उत्पाद करने वाले घड़े की) उत्पादन कारण के अभावके कारण, उत्पत्ति ही नहीं होगी; अथवा तो असत् का ही उत्पाद होगा। वहाँ, (१) यदि कुम्भकी उत्पत्ति न हो, तो सभी भावों की उत्पत्ति ही नहीं होगी (अर्थात् जिसप्रकार कुम्भकी उत्पत्ति नहीं होगी उसी-प्रकार विश्वके किसी भी द्रव्य में किसी भी भावका उत्पाद ही नहीं होगा यह दोष आयेगा) अथवा (२) यदि असत् का उत्पाद हो तो व्योम पुष्प–(आकाश के फूल) आदि के भी उत्पाद होगा। (अर्थात् शून्य में से भी पदार्थ उत्पन्न होने लगेंगे यह दोष आयेगा।)"

(श्री प्रवचनसार गाथा १०० की टीका)

प्रश्न (४१८)–संहार (व्यय) कारण किसे कहते हैं ?

उत्तर—"संहार (–नाश, व्यय) के कारण को संहारक कारण कहा जाता है। उत्पाद और ध्रौव्य रहित अकेले व्ययको मानने वाला संहारके कारणको नहीं मानता, **इसलिये व्यय (संहार) का कारण उत्पाद और ध्रौव्य है,** उसे न माना जाये तो–"मात्र संहार आरंभ करने वाले मृत्तिका पिण्ड का (उत्पाद और ध्रौव्य रहित अकेला व्यय करने वाले मृत्तिका पिण्ड का), **संहार कारणके अभावके कारण** संहार ही नहीं होगा; अथवा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तो सत् का ही उच्छेद हो जायेगा। वहाँ (१) यदि मृत्तिका पिण्ड का संहार न हो तो सभी भावोंका संहार ही नहीं होगा (अर्थात् जिसप्रकार मृत्तिका पिण्ड का व्यय नहीं होगा उसीप्रकार विश्व के किसी भी द्रव्य में किसी भी भाव का व्यय ही नहीं होगा—यह दोष आयेगा); अथवा (२) यदि सत् का उच्छेद होगा तो चैतन्यादि का भी उच्छेद हो जायेगा (अर्थात् सर्व द्रव्यों का समूल नाश हो जायेगा—यह दोष आयेगा।)"

—(श्री प्रवचनसार गाथा १०० की टीका)

[उत्पादन कारण और संहार कारण वे उपादान कारण के भेद हैं।]

प्रश्न (४१९)—समर्थ कारण किसे कहते हैं ?

उत्तर—प्रतिबंधका अभाव तथा सहकारी समस्त सामग्रियोंके सद्भाव को समर्थकारण कहते हैं। समर्थकारण के होने से कार्य की उत्पत्ति नियमसे होती है। उसके दृष्टान्तः—

१—"....अब, यह आत्मा जिस कारणसे (उपादान कारण से) कार्यसिद्धि अवश्य हो **उस कारणरूप उद्यम करे वहाँ तो अन्य कारण (निमित्त कारण) अवश्य मिलेंगे ही और कार्यकी सिद्धि भी अवश्य होगी ही**........इसलिये जो जीव श्री जिनेश्वर के उपदेशानुसार पुरुषार्थ पूर्वक मोक्षका उपाय करता है उसे तो काललब्धि और भवितव्य भी हो चुके, तथा कर्म के उपशमादि हुए हैं तब तो वह ऐसा उपाय करता है; **इसलिये जो पुरुषार्थ पूर्वक मोक्ष** का उपाय करता है उसे तो सर्व कारण मिलते हैं ऐसा निश्चय करना, और उसे अवश्य मोक्ष की प्राप्ति होती है......"

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(दे० से, प्रकाशित मोक्षमार्ग प्रकाशक पृष्ठ ४५६)

[नोटः—यहाँ ऐसा बतलाया है कि—जहाँ क्षणिक उपादान की योग्यता हो वहाँ निमित्त कारण होते ही हैं, और उन दोनों को समग्ररूपसे समर्थकारण कहते हैं।]

२—बनारसी विलास—उपादान—निमित्त—दोहा में कहा है कि:—

"उपादान निज गुण जहाँ, तहँ निमित्त पर होय;
भेदज्ञान प्रमाण विधि, विरला बूझे कोय।"

अर्थ:—जहाँ निज शक्तिरूप उपादान तैयार हो वहाँ परनिमित्त होता ही है;—ऐसी भेदज्ञान प्रमाण की विधि (व्यवस्था) है; यह सिद्धान्त कोई बिरले ही समझते हैं।

[यहाँ उपादान—निमित्त दोनों को ही समग्ररूपसे समर्थकारण कहा है।]

३—"....कोई कारण ऐसे हैं कि—जिनके होने से कार्य अवश्य सिद्ध होगा ही तथा जिनके न होने से कार्य सर्वथा सिद्ध नहीं होगा; जैसे कि—सम्यग्दर्शन—ज्ञान—चारित्रकी एकता होने से तो मोक्ष होता है और वैसा हुए बिना सर्वथा मोक्ष नहीं होता।"

(देहली० मोक्षमार्ग प्रकाशक पृष्ठ ४६२)

[यहाँ क्षणिक उपादानको समर्थकारण कहा है, किन्तु वहाँ उचित कर्मका अभाव निमित्त कारण होता है—ऐसा समझना।]

प्रश्न (४२०)—असमर्थ कारण किसे कहते हैं ?

उत्तर—"भिन्न—भिन्न प्रत्येक सामग्री को असमर्थ कारण कहते हैं। असमर्थ कारण कार्य का नियामक नहीं है।"

(जैन सि० प्रवेशिका)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उसके दृष्टान्तः—

१–"....सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान तथा सम्यग्चारित्र में से एक भी न हो तो वहाँ मोक्षमार्ग हो ही नहीं सकता....."

(मोक्षमार्ग प्रकाशक पृष्ठ ४६३)

२–"जिसे ऊपर कहे अनुसार भेदज्ञान है वही उसके (भेदविज्ञानके) सद्भावसे ज्ञानी होता हुआ इसप्रकार जानता है:–"जिस प्रकार प्रचण्ड अग्नि द्वारा तप्त होने पर भी सुवर्ण सुवर्णत्व को नहीं छोड़ता, **उसी प्रकार प्रचण्ड कर्मोदय द्वारा घिरा होने पर भी (अर्थात् विघ्न किये जाने पर भी) ज्ञान ज्ञानत्वको नहीं छोड़ता क्योंकि हजार कारण एकत्रित होने पर भी स्वभावको छोड़ना अशक्य है;** क्योंकि उसे छोड़ने से स्वभावमात्र वस्तुका ही उच्छेद हो जायेगा, और वस्तुका उच्छेद तो होता नहीं है, क्योंकि सत् के नाशका असम्भव है।–ऐसा जानता हुआ **ज्ञानी कर्म से आक्रान्त (घिरा हुआ, आक्रमित हुआ) होने पर भी रागी नहीं होता, द्वेषी नहीं होता, मोही नहीं होता, परन्तु शुद्धआत्माका ही अनुभवन करता है......"**

(श्री समयसार गा० १८४–१८५ की टीका; गुजराती आवृत्ति)

[यहाँ बाह्य हजार कारणों को तथा प्रचण्ड कर्मोदय को असमर्थ कारण कहा है।]

३–"अब, कारण तो अनेक प्रकार के होते हैं। कोई कारण तो ऐसे होते हैं जिनके हुए बिना कार्य न हो, और जिन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

के होने से कार्य हो अथवा न भी हो; जैसे कि–मुनिलिंग धारण किये बिना तो मोक्ष नहीं होता, **परन्तु मुनिलिंग धारण करने से मोक्ष हो अथवा न भी हो.....'**

(मोक्षमार्ग प्रकाशक, पृष्ठ ४६२)

[१–भावलिंग रहित बाह्य मुनिलिंग (अर्थात् अट्ठाईस मूलगुणका पालन, नग्नदिगम्बर दशा) को यहाँ असमर्थ कारण कहा है।

२–जहाँ क्षणिक उपादान कारण हो वहाँ निमित्त कारण होता ही है। उन दोनों को समग्ररूप से समर्थ कारण कहते हैं। अकेला क्षणिक उपादान कारण कभी होता ही नहीं; इसलिये भावलिंग मुनिपना हो वहाँ वाह्य मुनिलिंग नियम से होता है–ऐसा समझना।]

४–क्रोधोत्पत्ते पुनः बहिरंगं यदि भवेत् साक्षात्।
न करोति किञ्चिदपि क्रोधं तस्य क्षमा भवति धर्म इति।

अर्थः–क्रोध उत्पन्न होने के **साक्षात् बाह्य कारण मिलने पर भी** जो अल्प भी क्रोध नहीं करता उसके उत्तम क्षमाधर्म होता है।

(श्री कुन्दकुन्दाचार्य कृत द्वादशानुप्रेक्षा–७१)

[यहाँ बाह्य कारण अर्थात् निमित्तकारण अकेला है इसलिये उसे असमर्थ कारण समझना।]

प्रश्न (४२१)–साधकतम कारण किसे कहते हैं ?

उत्तर—क्षणिक उपादानकी योग्यता को साधकतम कारण कहते हैं।

—(विशेष के लिये देखिये, श्री प्रवचनसार गाथा १२६ की टीका)

जीव संसारदशा में या धर्मदशा में अकेला ही स्वयं अपना कारण है, क्योंकि वह अकेला हीं करण (कारण) था।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यहाँ अपने करण–साधन को साधकतम (उत्कृष्ट साधन) कहा है।

प्रश्न (४२२)–सहकारी कारण का क्या अर्थ? वह दृष्टान्त देकर समझाइये।

उत्तर—स्वयमेव ही गमनादि क्रियारूप वर्तते हुए जो जीव–पुद्गल–उन्हें धर्मास्तिकाय सहकारी कारण है। **उसमें उनका कारण-पना इतना ही है कि जहाँ धर्मादिक द्रव्य हों वहीं जीव–पुद्गल गमनादि क्रिया रूप वर्तते हैं।**

(देखिये, गोम्मटसार जीवकांड गाथा ५६७ बड़ी टीका)

प्रश्न (४२३)–अन्वयरूप कारण किसे कहते हैं?

उत्तर—सम्यग्दृष्टि को साधकदशा में चारित्र गुण के परिणमन में मिश्रदशा होती है उस में शुद्धदशा वह उपादान कारण है और उसके साथ अविनाभावरूप से रहनेवाले शुभभाव निमित्त होने से उसे अन्वयकारण कहा जाता है।

दृष्टान्त:–"....महाव्रत धारण किये विना सकल चारित्र कभी नहीं होता, इसलिये उन व्रतों को (महाव्रतोंको) **अन्वयरूप कारण जानकर** कारण में कार्य का उपचार करके उसे चारित्र कहा है; जैसे अरिहंतदेवादिक का श्रद्धान होने से तो सम्यक्त्व हो अथवा न भी हो, परन्तु अरिहंत देवादिक का श्रद्धान हुए बिना तत्त्वार्थ श्रद्धान रूप सम्यक्त्व कभी भी नहीं होता; इसलिये अरिहंतादिक के श्रद्धान को **अन्वयरूप कारण** जानकर कारण में कार्यका उपचार करके उस श्रद्धान को सम्यक्त्व कहा है...."

(दे० मोक्षमार्ग प्रकाशक पृष्ठ ४८१)

प्रश्न (४२४)–सहकारी कारण किसे कहते हैं?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उत्तर—निमित्त कारण को सहकारी कारण भी कहते हैं।

दृष्टान्त:—"अघातिकर्मों के उदय के निमित्त से शरीरादिक का संयोग होता है; मोहकर्म का उदय होने पर **शरीरादिक का संयोग** आकुलता का **बाह्य सहकारी** कारण है। अंतरंग मोह के उदय से रागादिक हों और बाह्य अघाति कर्मों के उदयसे रागादिक के कारणरूप शरीरादिक का संयोग हो तब आकुलता उत्पन्न होती है। मोहके उदयका नाश होने पर भी अघाति कर्मों का उदय रहता है, किन्तु वह कुछ भी आकुलता उत्पन्न नहीं कर सकता; परन्तु पूर्व काल में आकुलता को **सहकारी कारण** था, इसलिये अघातिकर्मों का नाश भी आत्मा को इष्ट ही है...."

(मोक्षमार्ग प्रकाशक पृष्ठ ४५२)

[यहाँ द्रव्य मोहकर्म के उदयको अंतरंग और शरीरादि को वाह्य सहकारी कारण कहा है। आकुलता में वे दोनों निमित्त कारण हैं।]

प्रश्न (४२५)–जीव का दूसरे द्रव्य उपकार करते हैं–ऐसा कथन तत्त्वार्थ सूत्र में आता है उसका क्या अर्थ ?

उत्तर—श्री परमात्मप्रकाश अ० २, गाथा २६–२७ में इस अर्थ से कहा है कि–परद्रव्य जीव का उपकार करते हैं वह व्यवहार-कथन है, अर्थात् वास्तव में उपकार नहीं करते किन्तु स्व-संवेदन लक्षण से विरुद्ध विभाव परिणति में रत हुए जीव को वे ही निश्चय से दुःख के कारण (निमित्त कारण) हैं।

उस गाथा के शीर्षक निम्नानुसार हैं:—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१–"अब, जीव का व्यवहारनय द्वारा अन्य पाँचों द्रव्य उपकार करते हैं–ऐसा कहते हैं तथा वे जीवको निश्चयसे दुःख के कारण हैं ऐसा कहते हैं।"

२–"अब, परद्रव्य को सम्बन्ध निश्चयनयसे दुःखका कारण है–ऐसा जानकर हे जीव! शुद्धात्माकी प्राप्तिरूप मोक्षमार्ग में स्थित हो!–ऐसा कहते हैं।"

[यह गाथाएँ और उनकी टीका मुमुक्षुओं को अवश्य पढ़ने योग्य हैं।]

प्रश्न (४२६)–कार्य, उपादान कारण सदृश (–जैसा) होता है, या निमित्त कारण सदृश होता है अथवा दोनों जैसा होता है ?

उत्तर—(१) उपादानकारणसदृशं कार्यं भवति—अर्थात् उपादान कारण जैसा कार्य होता है।

आधारः—हिन्दी समयसार श्री जयसेनाचार्यकृत टीका पृष्ठ १९१-१९३-२६४-३०४-४७६ तथा परमात्म प्रकाश अ० २, गाथा २१ टीका पृष्ठ १५१]

२–उपादान कारण जैसा कार्य होता है इसलिये निमित्त कारण जैसा अथवा दोनों जैसा कोई कार्य नहीं होता।

सदृश = समान, जैसा, समरूप एक-सा।

[भगवत् गोमंडल कोष (गुजराती) पृ० ८४–८८]

प्रश्न (४२७)–निमित्त–नैमित्तिक सम्बन्ध ही जीव और द्रव्यकर्म के बीच ही होता है या उपादान कारण और निमित्त कारणरूप सम्बन्ध भी उनमें होता है ?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उत्तर—(१) दोनों प्रकार का सम्बन्ध होता है। मात्र निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध ही होता है ऐसा नहीं है।

२—रागादि विकाररूप परिणमन वह जीवका स्वतंत्र नैमित्तिक कार्य है और द्रव्यकर्म का उदय वह पुद्गलका स्वतंत्र कार्य है तथा जीवके विकारका वह निमित्तमात्र है।

३—जीवके रागादि अज्ञानभाव वह अशुद्ध उपादानकारण है—निश्चयकारण है और द्रव्यकर्म का उदय वह निमित्त कारण है—व्यवहार कारण है।

श्री समयसार (हिन्दी) गा० १६४–६५ पृष्ठ २३८ जयसेनाचार्य टीका में कहा है कि:—

निर्विकल्पसमाधिभ्रष्टानां मोहसहित कर्मोदयो व्यवहारेण निमित्तं भवति। निश्चयेन पुनः अशुद्धोपादान कारणं स्वकीय रागादि अज्ञानभाव एव। १६४–१६५।

४—जीवका रागादि विकाररूप परिणमन निश्चयसे (वास्तवमें) निरपेक्ष है।

—(पंचास्तिकाय गाथा ६२ की टीका के आधार पर)

५—तत्त्व दृष्टि से आत्मा ज्ञाता है और कर्म ज्ञेय है, इसलिये उनके बीच ज्ञाता–ज्ञेय सम्बन्ध है; परन्तु जो ऐसे ज्ञाता–ज्ञेयके सम्बन्ध को चूकते हैं वे ही जीव रागादि विकार-रूप परिणमन करते हैं और उन्हें द्रव्यकर्मका उदय निमित्तमात्र कारण अर्थात् व्यवहारकारण कहा जाता है।

—इससे ऐसा समझना कि:—निमित्त (परवस्तु) जीवको पराधीन करता है, बिगाड़ता है अथवा सुधारता है—ऐसी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

परतन्त्रता माननेरूप मिथ्यादृष्टिपना छोड़कर स्वाश्रयी सच्ची दृष्टि करना योग्य है।

प्रश्न (४२८)–साक्षात् और परम्पराकारण किसे कहते हैं ?

उत्तर—उपादानकारणको साक्षात् कारण और निमित्तको परम्परा कारण कहा जाता है। उसके दृष्टान्त:—

१—"......यह चारों लक्षण (१–देव–गुरु–धर्म का श्रद्धान; २–तत्त्वश्रद्धान; ३–स्व–परका श्रद्धान; और ४–आत्म-श्रद्धान) मिथ्यादृष्टि को आभास मात्र होते हैं तथा सम्यग्दृष्टि को सच्चे होते हैं। वहाँ आभासमात्र हैं वे **नियम रहित रूप से** सम्यक्त्व के परम्परा कारण हैं तथा सच्चे हैं वे **नियमरूप** (सम्यक्त्वके) **साक्षात् कारण हैं।**

(मोक्षमार्ग प्रकाशक पृ० ४६१)

२—मिथ्यादृष्टिके रागके अंशसे अनेक दोषोंकी परम्परा होती है। मिथ्यादृष्टिका शुभराग **सर्व अनर्थों की परम्परा का कारण है।**

(पंचास्तिकाय गा० १६८ की जयसेनाचार्यकृत टीका के आधार से)

३—"पारम्पर्येण तु आस्रवक्रियया नास्ति निर्वाणम्।
संसारगमनकारणमिति निन्द्यं आस्रवं जानीहि ॥ ५२ ॥

अर्थ:—कर्म का आस्रव करने वाली क्रिया द्वारा परम्परा से भी निर्वाण प्राप्त नहीं हो सकता; इसलिये संसार में भटकाने के कारण-रूप आस्रव को निन्द्य जानो ॥ ५६ ॥

(देखो, श्री कुन्दकुन्दाचार्यकृत द्वादशानुप्रेक्षा गा० ५६)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

४—मति–श्रुत–अवधि–मन:पर्यय–केवलज्ञान **अभेदरूप साक्षात्** मोक्ष कारण है।

(देखो, समयसार (हिन्दी) गा० २१५, पृष्ठ ३०४, श्री जयसेनाचार्यकृत टीका)

तीर्थंकर प्रकृति आदि परम्परा निर्वाण का कारण हैं।

(देखो, समयसार (हिन्दी) गाथा १२१–१२५ की श्री जयसेनाचार्यकृत टीका पृष्ठ १८६)

५—".....विपरीत अभिनिवेश रहित श्रद्धानरूप ऐसा जो सिद्धि के **परम्परा हेतुभूत** भगवंत पंचपरमेष्ठी के प्रति चलता–मलिनता–अगाढ़ता रहित उत्पन्न हुआ निश्चल भक्तियुक्तपना वही सम्यक्त्व है....."

—(गुज० आवृत्ति नियमसार गा० ५१–५५ की टीका)

प्रश्न (४२९)—सम्यग्दृष्टि का शुभभाव वह परम्परासे धर्मका कारण है–ऐसा शास्त्र में कुछ स्थानों पर कहा जाता है उसका क्या अर्थ ?

उत्तर—"सम्यग्दृष्टि जीव अपने स्वरूपमें जब स्थिर नहीं रह सकते तब राग–द्वेष तोड़ने का पुरुषार्थ करते हैं, परन्तु पुरुषार्थ निर्बल होने से अशुभभाव दूर होता है और शुभ रह जाता है। उस शुभभावको वे धर्म या धर्म का कारण नहीं मानते, परन्तु उसे आस्रव जानकर दूर करना चाहते हैं; इसलिये जब वह शुभभाव दूर हो जाता है उस समय जो शुभभाव टला उसे शुद्धभाव (धर्म) का **परम्परा कारण** कहा जाता है; साक्षात् रूपसे वह भाव शुभास्रव होने से बंधका कारण है, और जो बंधका कारण हो वह संवरका कारण नहीं हो सकता।"

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(स्वा० मं० ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित हिन्दी आवृत्ति मोक्षशास्त्र, अ० ७ की भूमिका पृ० ४६४–६५)

अपनी प्रज्ञा के अपराध से शास्त्र के अर्थ को तथा आगे--पीछे की गाथाओं की संधिको न समझने वाले, जीव की अवस्था में रागादि होने के संबंध में स्फटिक के दृष्टांत द्वारा प्ररूपणा करते हैं, तत्सम्बन्धी स्पष्टीकरण:----

प्रश्न (४३०)–श्री समयसार बंध अधिकार गाथा २७८–७९ में–स्फटिक स्वभावसे शुद्ध होने पर भी लाल आदि रंगों के संयोग से लालादिरूप किया जाता है, उसी प्रकार आत्मा स्वभावसे शुद्ध होने पर भी अन्य द्रव्यों द्वारा रागी आदि किया जाता है। --ऐसा कहा है, उस पर से ऐसा माना जाये कि--"जैसा कर्म का उदय हो तदनुसार ही--तद्रूप ही--जीवको विकार करना पड़ता है--ऐसा वस्तुका स्वभाव है तो वह मान्यता ठीक है ?

उत्तर—१–नहीं; (यह मान्यता झूठी है) इस विषयका स्पष्टीकरण श्री समयसार नाटक बंध द्वार में निम्नानुसार किया है कि:—

"जैसे नाना वरन पुरी बनाई दीजै हेठ,
उज्ज्वल विमल मनि सूरज--करांति है;
उज्ज्लता भासै जब वस्तुको विचार कीजै,
पुरी की झलक सौं वरन भाँति–भाँति है।
तैसें जीव दरव कौं पुग्गल निमित्त रूप,
ताकी ममता सो मोह मदिरा की भाँति है;

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भेदग्यान द्रिष्टि सौं सुभाव साधि लीजै तहाँ,
सांची सुद्ध चेतना अवाची सुख सांति है।" ३४।

अर्थः—जिस प्रकार स्वच्छ और श्वेत सूर्यकान्त अथवा स्फटिक मणिके नीचे अनेक प्रकार के रंगीन डाँक रखे जायें तो वे अनेक प्रकार के रंग बिरंगे दिखने लगते हैं, और यदि वस्तु के मूल स्वरूप का विचार किया जाये तो उज्ज्वलता ही दिखाई देती है। उसी प्रकार जीव द्रव्यको पुद्गल तो मात्र निमित्तरूप है (किन्तु) उसकी ममता के कारण से मोह–मदिरा की उन्मत्तता होती है। तथापि भेद विज्ञान द्वारा स्वभावका विचार किया जाये तो सत्य और शुद्ध चैतन्यकी वचनातीत सुख शांति प्रतीत होती है। ३४।

२—ऊपर की गाथा, टीका और उसके कलश के अनुसंधान में समयसार गा० २८० में इस विषयका स्पष्टीकरण किया गया है। वहाँ बतलाया है कि–वस्तु स्वभावको जाननेवाले ज्ञानी (आत्मा) अपने शुद्ध स्वभावसे ही च्युत नहीं होते, वे कर्म का उदय होने पर भी राग–द्वेष–मोह भावके कर्ता नहीं होते। और गाथा २८१ में कहा है कि वस्तु स्वभाव को न जानने वाले ऐसे अज्ञानी जीव कर्मके साथ एकत्व बुद्धि करते हैं और भेदज्ञान नहीं करते इसलिये वे कर्मके उदयमें युक्त होकर राग–द्वेष–मोहादि भावके कर्ता होते हैं।

३—समयसार–बंध अधिकार की गाथाओं में ऐसा समझाया है कि:—आत्माका ध्रुवस्वभाव अबंध है, उसका जो आश्रय नहीं करते उन्हीं को भाव तथा द्रव्यबंध होता है, और जो ध्रुवस्वभाव का आश्रय करते हैं उन्हें भाव तथा द्रव्यबंध नहीं होता। [सम्यग्दृष्टि को अपनी निर्बलता के कारण अल्पबंध होता है उसे गौण माना है।]

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

४—समयसार गाथा ३१२ से ३१५ में भी तदनुसार बतलाया है। गाथा ३१४ में तो कहा है कि–जहाँ तक आत्मा प्रकृति के निमित्त से उत्पन्न होना–नष्ट होना नहीं छोड़ता वहाँ तक वह अज्ञायक है, मिथ्यादृष्टि है, असंयत है।

५—प्रवचनसार ज्ञेय अधिकार गाथा १८६ में अशुद्धपरिणाम आत्मद्रव्य से (द्रव्यजातस्य) स्व-द्रव्य से उत्पन्न होते हैं–ऐसा कहा है। अर्थात् रागादि विकार जीव के अपने अशुद्ध उपादान के कारण होते हैं। द्रव्यकर्म तो निमित्त मात्र है। इसलिये कर्म का उदय जीव को विकार कराने के लिये निमित्त होकर आता है ऐसा भी नहीं है, किन्तु "संसारदशा में आत्मा पर द्रव्य परिणाम को (-पुद्गलकर्मपरिणामको) निमित्तमात्र करता है (-निमित्त बनाता है)—ऐसे केवल स्वपरिणाम मात्र के (–वे स्वपरिणाम स्वद्रव्यपने रूप होने से) कर्तृत्व का अनुभव करता है।

भावार्थ—"अभी संसारदशा में जीव पौद्गलिक कर्म परिणाम को निमित्तमात्र करके अपने अशुद्ध परिणाम का ही कर्ता होता है।" (प्रवचनसार गाथा १८६, पृष्ठ ३०५)

प्रश्न (४३१)–बलाधान का क्या अर्थ है ? २–बलाधान कारण किसे कहते हैं ?

उत्तर—१–बलाधानका व्युत्पत्ति अर्थ बल × आधान = बलका धारण–ऐसा होता है।

२–उपादान कारण अपना कार्य करने का बल स्वयं अपने से धारण करे उस समय जो निमित्त हो उसे बलाधान कारण कहा जाता है। निमित्त वास्तव में उपादान को किंचित् बल

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नहीं दे सकता—ऐसा बतलानेके लिये **बलाधानमात्र** निमित्तको कहा जाता है। जिसके दृष्टान्तः—

(१)"....वह इन्द्रिय ज्ञानवाला जीव स्वयं अमूर्त होने पर भी मूर्त ऐसे पंचेन्द्रियात्मक शरीर को प्राप्त होता हुआ, **ज्ञप्ति उत्पन्न होने में बलधारण का निमित्त होता है** इसलिये जो उपलंभक (बतलानेवाला, जानने में निमित्तभूत) है ऐसे उस मूर्त (शरीर) द्वारा मूर्त ऐसी स्पर्शादिप्रधान वस्तु को—कि जो योग्य हो उसका अवग्रहण करके, कदाचित् उससे ऊपर–ऊपर की (अवग्रहसे आगे–आगे की) शुद्धि के सद्भाव के कारण उसे जानता है....." (प्रवचनसार गाथा ५५ की टीका)

(२) तत्त्वार्थसार अध्याय २, सूत्र ३९ में कहा है कि–

क्रियाहेतुत्व मेतेषां निष्क्रियाणां न हीयते।
यतः खलु बलाधानमात्रमत्र विविक्षितम् ॥ ३९ ॥

अर्थः—धर्मास्तिकाय निष्क्रिय होने पर भी उसका क्रियाहेतुपना नाश को प्राप्त नहीं होता जिससे उसे वास्तव में **बलाधान मात्र** कहा जाता है।

(३) जिसप्रकार उपकार और आलम्बन–इन शब्दों का अर्थ निमित्त होता है उसी प्रकार **बलाधान का भी वैसा ही** अर्थ होता है। राजवार्तिक अध्याय ५, सूत्र १६–१७ के नीचे कारिका १६ में कहा है कि:—

तयोः कर्तृत्वप्रसंग इति चेन्नोपकारवचनाद् यष्टयोदिवत् ॥१६॥

उपरोक्त कारिका की संस्कृत टीका का अर्थः—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

"गति–स्थितिका धर्म और अधर्म कर्ता है–ऐसा अर्थ का प्रसंग आता है, तो वैसा नहीं है। क्या कारण ? उपकार–वचनके कारण। उपकार, बलाधान, अवलम्बनादि पर्यायवाची शब्द हैं। जिससे धर्म–अधर्म के, गति–स्थिति होने में, प्रधान कर्तृत्वपने का अस्वीकार हुआ है। जैसे:—अपनी जाँघ के बल से जाते हुए अंध (मनुष्य) को अथवा अन्य किसी को लकड़ी आदि उपकारक होते हैं–न कि प्रेरक (होते हैं), उसीप्रकार अपनी शक्ति से स्वयमेव चलने–स्थिर रहने-वाले जीव–पुद्गलों को धर्म–अधर्म उपकारक हैं–न कि प्रेरक हैं।"

प्रश्न (४३२)–मुख्य तथा उपचार कारणों का क्या अर्थ है ?

उत्तर—उपादान वह मुख्य कारण है और निमित्त वह उपचार कारण है।

मुख्य का अर्थ निश्चय और उपचारका अर्थ व्यवहार होता है। (देखो, पुरुषार्थ सिद्धयुपाय (कलकत्ता से प्रकाशित) गाथा २२२ की हिन्दी टीका पृष्ठ १२२, और छहढाला–ढाल ६ का १४ वाँ छन्द।)

प्रश्न (४३३)–निमित्त–उपादान के प्रश्नों में क्या सिद्धान्त निहित है ?

उत्तर—१–(१) कोई अकेले ध्रुव उपादान कारण को माने किन्तु क्षणिक उपादान तथा निमित्त कारणों को माने, (२) कोई ध्रुव उपादान कारणको तथा निमित्त कारण को माने किन्तु क्षणिक उपादान कारण को न माने, (३) कोई क्षणिक उपादान कारण को माने किन्तु ध्रुव उपादान तथा निमित्त कारणों को न माने, (४) कोई निमित्त कारण को ही माने किन्तु ध्रुव और क्षणिक उपादान कारणों को न माने उसकी यह चारों प्रकार की मान्य-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ताएँ मिथ्या हैं ।

२–उपादान का कार्य उपादान से ही होता है । निमित्त कारण कार्य काल में होता है, किन्तु उस निमित्तकारण की प्रतीक्षा करना पड़ती है या उसे मिलाना पड़ता है–ऐसा कोई माने तो वह मान्यता मिथ्या है ।

३–निमित्त पर है, इसलिये उसे प्राप्त नहीं किया जा सकता; तथापि कोई बाह्य सामग्री रूप निमित्तकारण ढूँढने के निरर्थक कार्य में रुके उसे आकुलता हुए बिना नहीं रहेगी ।

४–निमित्त के साथ का सम्बन्ध एक समय पर्यंत होता है—ऐसा सूक्ष्मदृष्टिवान जानता है । छद्मस्थका ज्ञानोपयोग असंख्यात समयका है, इसलिये निमित्त मिलानेकी शोध व्यर्थ है ।

५–निमित्त अपना उपादान है और स्व उपादान रूप से अपना कार्य अपने में करता है । यदि वह पर उपादान का कार्य अंशतः भी करे अर्थात् पर उपादान को वास्तव में असर करे, उसको आधार दे, उसपर प्रभाव डाले, उसे लाभ–हानि करे, मदद करे, शक्ति दे–आदि, तो निमित्त ने दो कार्य किये—एक अपना और दूसरा पर उपादान का ऐसा सिद्ध होगा; और ऐसा मानने वाला द्विक्रियावादी होने से वह अरिहंत के मत का नहीं है ।

६–गति मानादि निमित्तों को (असद्भूत व्यवहारनयसे) निमित्तकर्ता–हेतुकर्ता–कहा जाता है । अन्य निमित्तों से उनका प्रकार भिन्न बतलाने के लिये ऐसा कहा जाता है, किन्तु ऐसा ज्ञान कराने के लिये, नहीं कि वे निमित्त उपादान का कुछ भी कार्य करते हैं । सर्व प्रकार के निमित्त उपादान के प्रति धर्मा-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्तिकायवत् उदासीन कारण हैं।

(देखो, "इष्टोपदेश" गाथा—३५)

७—जीव पुद्गल गति करें तब धर्मास्तिकाय की उपस्थिति न हो ऐसा नहीं हो सकता; उसी प्रकार जब क्षणिक उपादान कार्य के लिये तैयार हो तब अनुकूल निमित्त उपस्थित न हो ऐसा नहीं होता।

८—निमित्तकारण उपादान कारण के प्रति निश्चय से (वास्तवमें) **अकिंचित्कर** (कुछ न करने वाला) है, इसीलिये उसे **निमित्तमात्र, बलाधानमात्र, सहायमात्र, अहेतुवत्**-- ऐसे शब्दों द्वारा सम्बोधित किया जाता है।

९—निमित्त ऐसा घोषित करता है कि उपादानका कोई कार्य मैंने नहीं किया; मुझमें उसका कार्य करने की शक्ति नहीं है; किन्तु वह कार्य उपादान अकेले ने किया है।

१०—निमित्त, व्यवहार और परद्रव्य है अवश्य, किन्तु वे आश्रय करने योग्य नहीं हैं इसलिये हेय हैं।

[देखो, श्री समयसार गा० ११६ से १२० की टीका—श्री जयसेनाचार्यकृत पृष्ठ १८२, द्रव्य संग्रह गा० २३ की टीका तथा सिद्ध चक्र विधान पूजा छठवीं की जयमाला। (कवीश्वर संतलाल कृत) "जय परनिमित्त व्यवहार त्याग....."]

११—जितने कार्य हैं उतने निमित्तों के स्वभाव भेद हैं, किन्तु एक भी स्वभाव भेद ऐसा नहीं है कि जो परका उपादान का कोई कार्य वास्तव में करे।

१२—किसी समय उपादान कारण निमित्त में अतिशय

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रख देता है और कभी निमित्त कारण उपादान में बलात्कार से नाना चमत्कार घुसा देता है—ऐसी मान्यता झूठी है। वह दो द्रव्यों की एकत्व बुद्धि बतलाती है। निमित्त कारण के लिये पाँचवी विभक्ति का उपयोग किया जाता है, इसलिये वह आरोपित कारण मिटकर निश्चय कारण नहीं हो जाता। निमित्त कारण होने के लिये परिश्रम, तीव्र यातना या घोर तपस्या करनी पड़ती है—यह मान्यता झूठी है।

१३—कार्य की उत्पत्तिके समय उपादान और निमित्त—दोनों अविकल कारण होते हैं;—ऐसी वस्तु स्वभावकी स्थिति है।

१४—पृथ्वी, जल, तेज और वायु—इन निमित्तों से चैतन्य उत्पन्न होता है—ऐसा मानने वाले को श्री आचार्य कहते हैं कि—**उपादान के बिना कोई कार्य उत्पन्न नहीं होता।**

१५—छहों द्रव्यों में अनादि—अनंत प्रत्येक समय कार्य होता ही रहता है; कोई भी समय किसी भी द्रव्यमें कार्य रहित नहीं होता और उस प्रत्येक कार्य के समय उपादानकारण और निमित्त कारण—दोनों सुनिश्चित् रूपसे होते ही हैं—न हों ऐसा कभी नहीं होता।

१६—उपादानकारण हो और चाहे जैसा निमित्तकारण हो—ऐसा माने वह भी मिथ्यामति है क्योंकि उपादान के अनुकूल ही उचित निमित्त कारण होता है।

निमित्तकारण आये तभी उपादान में कार्य होता है—ऐसी मान्यता भी झूठी है; क्योंकि प्रत्येक क्षणिक उपादानकारण के समय निमित्तकारण होता ही है।

१८—उपादान—निमित्त दोनों एकसाथ अपने—अपने कारण से होते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१६–वास्तव में निश्चयकारण (उपादानकारण) ही सच्चा कारण है, परन्तु उसका कथन दो प्रकार से है। यह निम्नोक्त—"मोक्षमार्ग सम्बन्धी सिद्धान्त"—भी इस कथन को समान रीति से लागू होता है—

"मोक्षमार्ग कहीं दो तो नहीं हैं, किन्तु मोक्षमार्ग का निरूपण दो प्रकार से होता है। जहाँ सच्चे मोक्षमार्ग को मोक्षमार्ग निरूपण किया है वह निश्चय मोक्षमार्ग है और जहाँ जो मोक्षमार्ग तो नहीं है परन्तु मोक्षमार्ग का निमित्त है अथवा सहचारी है उसे उपचार से मोक्षमार्ग कहें वह व्यवहार मोक्षमार्ग है; क्योंकि निश्चय–व्यवहारका सर्वत्र ऐसा ही लक्षण है; अर्थात् सच्चा निरूपण वह निश्चय तथा उपचार निरूपण वह व्यवहार; इसलिये निरूपण की अपेक्षा दो प्रकार से मोक्षमार्ग जानना; किंतु एक निश्चय मोक्षमार्ग है तथा एक व्यवहार मोक्षमार्ग है—इसप्रकार दो मोक्षमार्ग मानना मिथ्या है। और उन निश्चय–व्यवहार दोनों को उपादेय मानता है वह भी भ्रम है, क्योंकि निश्चय–व्यवहार का स्वरूप तो परस्पर विरोधता सहित है......"

—(मोक्षमार्ग प्रकाशक पृष्ठ–३६५–६६)

प्रश्न (४३२)–उपादान–निमित्त सम्बन्धी प्रश्नों के समाधान में कहे अनुसार पर निमित्त और व्यवहार हेय हैं, तो ध्रुवउपादान के ही आश्रय से धर्म होता है–ऐसा बतलानेवाले कुछ शास्त्राधार दीजिये।

उत्तर—१–श्री समयसार गाथा–११

व्यवहारोऽभूतार्थो भूतार्थो दर्शितस्तु शुद्धनयः।
भूतार्थमाश्रितः खलु सम्यग्दृष्टिर्भवति जीवः ।। ११ ।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थः—व्यवहारनय अभूतार्थ है और **शुद्धनय भूतार्थ है**—ऐसा ऋषीश्वरों ने दर्शाया है; **जो जीव भूतार्थ का आश्रय करता है वह** जीव निश्चय से सम्यग्दृष्टि है।

२—श्री समयसार कलश ६, में कहा है कि:—

अर्थः—इस आत्मा को अन्य द्रव्योंसे भिन्न देखना (श्रद्धा करना) ही नियम से सम्यग्दर्शन है। कैसा है आत्मा? अपने गुण-पर्यायों में व्याप्त होने वाला है। पुनश्च कैसा है? **शुद्धनय से एकत्व में** निश्चित् किया गया है। पुनश्च कैसा है? **पूर्ण ज्ञानघन है**। पुनश्च, **जितना सम्यग्दर्शन है उतना ही आत्मा है**। इसलिये आचार्य प्रार्थना करते हैं कि—**नवतत्त्वों की परिपाटी छोड़कर, यह एक आत्मा ही हमें प्राप्त हो**। ६।

३—श्री समयसार कलश ७ में कहा है कि:—

अर्थः—तत्पश्चात् **शुद्ध नयाधीन** जो भिन्न आत्मज्योति है वह प्रगट होती है, कि जो नवतत्त्वों में प्राप्त होने पर भी अपने एकत्व को नहीं छोड़ती।

४—श्री समयसार गा० १३-१४-१५ में कहा है कि:—

भूतार्थेनाभिगता जीवाजीवौ च पुण्यपापं च।
आस्रवसंवरनिर्जरा बंधो मोक्षश्च सम्यक्त्वम् ॥१३॥

अर्थः—भूतार्थनय से जाने हुए जीव, अजीव और पुण्य, पाप तथा आस्रव, संवर, निर्जरा, बंध और मोक्ष—यह नवतत्त्व सम्यक्त्व हैं।१३।

यः पश्यति आत्मानम् अबद्धस्पृष्टमनन्यकं नियतम्।
अविशेषमसंयुक्तं तं शुद्धनयं विजानीहि ॥ १४ ॥

अर्थः—जो नय आत्मा को बंध रहित और पर के स्पर्श रहित, अन्यपने रहित, चलाचलता रहित, विशेष रहित, अन्य के संयोग रहित—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ऐसे पाँच भावरूप देखता है उसे, हे शिष्य ! तू शुद्ध नय जान ।१४।

य: पश्यति आत्मानं अबद्धस्पृष्टमनन्यमविशेषम् ।
अपदेशसान्तमध्यं पश्यति जिनशासनं सर्वम् ।। १५ ।।

अर्थ:—जो पुरुष आत्मा को अबद्धस्पृष्ट, अनन्य, अविशेष [तथा उपलक्षण से नियत और असंयुक्त] देखता है वह सर्व जिनशासन को देखता है,—कि जो जिनशासन बाह्य द्रव्यश्रुत तथा अभ्यन्तर ज्ञानरूप भावश्रुतवाला है। १५ ।

५–श्री **समयसार** गाथा १६ की टीका के नीचे कलश–१८ में कहा है कि:—

परमार्थेन तु व्यक्तज्ञातृत्वज्योतिषैकक: ।
सर्वभावांतरध्वंसिस्वभावत्वादमेचक: ।।१८।।

अर्थ:—शुद्ध निश्चयनय से देखा जाये तो प्रगट ज्ञायक ज्योतिमात्र से आत्मा एकस्वरूप है, क्योंकि शुद्ध–**शुद्ध द्रव्यार्थिकनय से सर्व अन्य द्रव्य के स्वभावों तथा अन्य के निमित्त से होनेवाले विभावों को दूर करनेरूप उसका स्वभाव है,** इसलिये वह "अमेचक" है–शुद्ध एकाकार है। १८ ।

६—श्री समयसार गाथा १७९–८० की टीका में नीचे कलश–१२२ में कहा है कि:—

इदमेवात्र तात्पर्यं हेय: शुद्धनयो न हि ।
नास्ति बंधस्तदत्यागात्त्यागाद्बंध एव हि ।।१२२।।

अर्थ:—यहाँ यही तात्पर्य है कि **शुद्धनय त्यागने योग्य नहीं है;** क्योंकि उसके अत्याग से (कर्मका) बंध नहीं होता और **उसके त्याग से बंध ही होता है।** १२२ ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

७—श्री समयसार गाथा २७१ की टीका, कलश—१७३ में कहा है कि:—

(शार्दूल विक्रीड़ित)

सर्वत्राध्यवसानमेवमखिलं त्याज्यं यदुक्तं जिनै-
स्तन्मन्ये व्यवहार एव निखिलोऽप्यन्याश्रयस्त्याजितः।
सम्यङ्निश्चयमेकमेव तदमी निष्कंपमाक्रम्य किं ?
शुद्धज्ञानघने महिम्नि न निजे बध्नंति संतो धृतिम् ॥१७३॥

अर्थ:—आचार्यदेव कहते हैं कि—सर्व वस्तुओं में जो अध्यवसान होते हैं वे सभी (अध्यवसान) जिन भगवन्तों ने, पूर्वोक्त रीति से त्यागने योग्य कहे हैं इसलिये हम ऐसा मानते हैं कि—"पर जिसका आश्रय है ऐसा व्यवहार ही सारा छुड़ाया है।" तो फिर सत्पुरुष एक सम्यग्निश्चय को ही निष्कंपरूप से अंगीकार करके शुद्ध ज्ञानघनस्वरूप निज महिमा में—(आत्मस्वरूप में) स्थिरता क्यों धारण नहीं करते ?

८—पं० श्री बनारसीदास रचित समयसार नाटक के आस्रव-अधिकार में १३ वें श्लोक में कहा है कि:—

अशुद्ध नय से बंध और शुद्धनय से मुक्ति

"यह निचोर या ग्रन्थ कौ, यहै परम रस पोख,
तजै शुद्धनय बंध है, गहै शुद्धनय मोख।" १३।

अर्थ:—इस शास्त्रका निचोड़ यही है और यही परमतत्त्वकापोषक है कि—**शुद्धनय की रीति छोड़ने से बंध और शुद्धनयकी रीति ग्रहण करने से मोक्ष होता है।**

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

९—श्री समयसार नाटकके बंधद्वार, श्लोक ३२ में कहा है कि:-

"असंख्यात लोक परवांन जे मिथ्यात्व भाव
तेई विवहार भाव केवली—उकत हैं;
जिन्हकौ मिथ्यात्व गयौ, सम्यक् दरस भयौ,
ते नियत–लीन, विवहार सौं मुकत हैं।
निरविकल्प निरुपाधि आतम समाधि,
साधि जे सुगुन मोख पंथ कौं ढुकत हैं;
तेई जीव परम दसामैं थिररूप ह्वै कै,
धरम मैं धुके न करमसौं रुकत हैं। ३२।

अर्थ:—असंख्यात लोक प्रमाण जो मिथ्यात्व भाव है वह व्यवहार भाव है ऐसा केवली भगवान् कहते हैं। जिस जीवके मिथ्यात्व का नाश होने से सम्यग्दर्शन प्रगट होता है, वह व्यवहारसे मुक्त होकर निश्चय में लीन होता है और वह निर्विकल्प, निरुपाधिमय आत्मानुभव को साधकर सच्चे मोक्षमार्ग में लग जाता है और वही परम-ध्यान में स्थिर होकर निर्वाण प्राप्त करता है, कर्मों से नहीं रुकता। ३२।

१०—श्री **मोक्षपाहुड़** गाथा ३१ में कहा है कि:—

जो सुत्तो ववहारे सो जोई जग्गए सकज्जम्मि
जो जग्गदि ववहारे सो सुत्तो अप्पणो कज्जे ॥३२॥

अर्थ:—जो योगी ध्यानी मुनि व्यवहार में सोते हैं वे अपने स्वरूप के कार्य में जागते हैं और जो व्यवहार में जागते हैं वे अपने आत्म-कार्य में सोते हैं।

११—श्री प्रवचनसार गाथा २०० में कहा है कि:—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तस्मात्तथा ज्ञात्वात्मानं ज्ञायकं स्वभावेन।
परिवर्जयामि ममतामुपस्थिती निर्ममत्वे ॥ २०० ॥

अर्थः—इसलिये (अर्थात् शुद्धात्मा में प्रवृत्ति द्वारा ही मोक्ष होता है इसलिये) इसप्रकार आत्माको स्वभावसे ज्ञायक जानकर मैं निर्ममत्व में स्थित रहता हुआ ममता का परित्याग करता हूं।२००।

१२—श्री नियमसार गाथा ३८ तथा ५० में कहा है किः—

जीवादिवहिस्तत्त्वं हेयमुपादेयमात्मनः आत्मा ।
कर्म्मोपाधिसमुद्भवगुणपर्य्यायैर्व्यतिरिक्तः ॥३८॥

अर्थः—जीवादि वाह्यतत्व हेय (त्यागने योग्य) हैं; कर्मोपाधि-जनित गुणपर्यायों से व्यतिरिक्त आत्मा आत्माको उपादेय है। ३८।

पूर्वोक्तसकलभावाः परद्रव्यं परस्वभावा इति हेयाः ।
स्वकद्रव्यमुपादेयं अन्तस्तत्वं भवेदात्मा ॥ ५०.॥

अर्थः—पूर्वोक्त सर्वभाव परस्वभाव हैं, परद्रव्य हैं, इसलिये हेय हैं; अन्तःतत्त्व ऐसा स्वद्रव्य—आत्मा उपादेय है। ५०।

१३—श्री नियमसार गाथा १४की टीका, कलश–२४, तथा गाथा १५ की टीका कलश २७ में कहा है किः—

अथ सति परभावे शुद्धमात्मानमेकं
सहजगुण मणीनामाकरं पूर्णबोधम् ।
भजति निशितबुद्धिर्यः पुमान् शुद्धदृष्टिः
स भवति परमश्रीकामिनोकामरूपः ॥२४॥

अर्थ;—परभाव होने पर भी,सहज गुणमणि की खानरूप और पूर्ण ज्ञान वाले शुद्ध आत्माको एक को जो तीक्ष्ण बुद्धिवाला **शुद्धदृष्टि पुरुष** भजता है, वह पुरुष परमश्रीरूपी कामिनीका (मुक्ति सुन्दरीका) वल्लभ बनता है। २४।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अपि च बहुविभावे सत्ययं शुद्धदृष्टिः
सहजपरमतत्त्वाभ्यास निष्णातबुद्धिः।
सपदि समयसारान्नान्यदस्तीतिमत्वा
स भवति परमश्रीकामिनीकामरूपः ॥२७॥

अर्थः—बहुविभाव होने पर भी सहज परमतत्व के अभ्यास में जिसकी बुद्धि प्रवीण है ऐसा यह शुद्धदृष्टिवाला पुरुष, "समयसार से अन्य कुछ भी नहीं है"—ऐसा मानकर शीघ्र परमश्री सुन्दरीका वल्लभ होता है । २७ ।

१४—श्री नियमसार गाथा ४१ की टीका में कहा है किः—

"***त्रिकाल निरुपाधि जिसका स्वरूप है ऐसे निरंजन **निज परम पंचमभावकी (पारिणामिकभावकी) भावना से** मुमुक्षुओं, पंचमगति में जाते हैं; जायेंगे और जाते थे।"

१५—श्री समयसार गाथा २७२ में कहा है किः—

एवं व्यवहारनयः प्रतिषिद्धो जानीहि निश्चयनयेन :
निश्चयनयाश्रिताः पुनर्मुनयः प्राप्नुवंति निर्वाणम् ॥२७२॥

अर्थः—इस प्रकार (पूर्वोक्त रीतिसे) (पराश्रित ऐसा) व्यवहारनय निश्चयनय द्वारा निषिद्ध जान; निश्चयनयाश्रित मुनि निर्वाणको प्राप्त करते हैं। २७२ ।

१६—श्री समयसार गाथा १५२ से १५४ में कहा है किः—

परमार्थ में नहिं तिष्ठकर, जो तप करें व्रतको धरें ।
तप सर्व उसका बाल अरु, व्रत बात जिनवरने कहे ॥१५२॥
व्रत नियमको धारें भले, तप शील को भी आचरें ।
परमार्थ से जो बाह्य वो, निर्वाण प्राप्ति नहिं करें ॥१५३॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

परमार्थ बाहिर जीवगण, जानें न हेतू मोक्षका।
अज्ञानसे वे पुण्य इच्छें, हेतु जो संसारका ॥१५४॥

१७—श्री समाधितंत्र में श्री पूज्यपादाचार्य गाथा ७८ में कहते हैं कि:—

व्यवहारे सुषुप्तो यः स जागर्त्यात्मगोचरे।
जागर्ति व्यवहारेऽस्मिन् सुषुप्तश्चात्मगोचरे ॥७८॥

अर्थ:—जो कोई व्यवहार में सोता है अर्थात् उसमें अप्रयत्नशील है, वह आत्मा के कार्य में–स्व-संवेदन में जागृत–तत्पर रहता है, और जो इस व्यवहारमें जागता है–उसकी साधनामें तत्पर रहता है वह स्वानुभव के विषय में सोता है ॥ ७८ ॥

१८—श्री तत्त्वानुशासन में श्री नागदेवमुनिने कहा है कि:—

स्वपरज्ञप्तिरूपत्वान्न तस्य कारणान्तरम्।
ततश्चितां परित्यज्य स्वसंवित्त्यैव वेद्यताम् ॥ १६२ ॥

अर्थ:—आत्मा स्व-पर का ज्ञातास्वरूप होने से उसका अन्य कोई कारण नहीं है इसलिये अन्य कारणान्तरों की चिंता छोड़कर स्व-संवेदन द्वारा ही आत्माका अनुभव करना चाहिये ।१६२।

१९—श्री समयसार गाथा ४१३ में कहा है कि:—

बहुभाँतिके मुनिलिंग जो अथवा गृहस्थी लिंग जो।
ममताकरे उननें नहीं जाना 'समयके सार' को ॥ ४१३ ॥

अर्थ:—जो अधिक प्रकार के मुनिलिंगों में अथवा गृहस्थलिंगों में ममत्व करते हैं (अर्थात् यह द्रव्यलिंग ही मोक्ष देनेवाला है–ऐसा मानते हैं), उन्होंने समयसार को नहीं जाना है।

टीका:—जो वास्तव में "मैं श्रमण हूँ, मैं श्रमणोपासक (श्रावक) हूँ"—इसप्रकार द्रव्यलिंग में ममकार द्वारा मिथ्या अहंकार करते हैं,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वे अनादिरूढ़ (अनादि से चले आरहे) व्यवहार में मूढ़ (-मोही) वर्तते हुए, प्रौढ़ विवेकवान निश्चय (निश्चयनय) पर अनारूढ़ वर्तते हुये, परमार्थ सत्य (-जो परमार्थतः सत्यार्थ है ऐसे) भगवान समयसार को (-आत्माको) नहीं देखते—अनुभव नहीं करते।

२०--श्री पद्मनंदि पंच विंशतिका के निश्चय–पंचाशत, गाथा ९ तथा १७ में कहा है कि:—

व्यवहारोऽभूतार्थो भूतार्थो देशितस्तु शुद्धनयः।
शुद्धनय आश्रिता ये प्राप्नुवन्ति यतयः पदं परमम् ॥९॥

अर्थः—व्यवहारनय तो असत्यार्थभूत कहा गया है और शुद्धनय सत्यार्थभूत कहा गया है, और जो मुनि शुद्धनयके आश्रित हैं वे मोक्ष को प्राप्त करते हैं। ९।

अस्पृष्टमबद्धमनन्यमयुतमविशेसमभ्रमोपेतः।
यः पश्यत्यात्मानं स पुमान् खलु शुद्धनयनिष्ठः ॥१७॥

अर्थः—जो पुरुष भ्रम रहित होकर आत्माको अबद्ध, अस्पृष्ट, अनन्य, असंयुक्त, अविशेष मानता है वही पुरुष शुद्धनय में स्थित है ऐसा समझना चाहिये। १७।

२१—श्री पुरुषार्थसिद्ध्युपाय (श्री अमृतचन्द्राचार्यकृत) में कहा है कि:—

निश्चयमिह भूतार्थं व्यवहारं वर्णयन्त्यभूतार्थम्।
भूतार्थबोधविमुखः प्रायः सर्वोऽपि संसारः ॥ ५ ॥

अर्थः—आचार्यदेव निश्चयनय को भूतार्थ और व्यवहारनय को अभूतार्थ वर्णन करते हैं। प्रायः सभी संसारी (मिथ्याज्ञानी) भूतार्थ अर्थात् निश्चयनय के ज्ञानसे विमुख होते हैं। /

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

२२—श्री **नियमसार** गाथा ४३ की टीका, कलश ६५ में कहा है कि:—

[द्रुतविलम्बित]

भवभोग पराङ्मुख हे यते ! पदमिदं भवहेतुविनाशनम् ।
भज निजात्मनिमग्नमते पुन,–स्तव किमध्रुववस्तुनि चिन्तया ॥६५॥

अर्थ:—निज आतमा में लीन बुद्धि वाले तथा भव से और भोग से पराङ्मुख हुए हे यति ! तू भवहेतु का विनाश करने वाले ऐसे इस (ध्रुव) पद को भज; अध्रुव वस्तु की चिन्ता से तुझे क्या प्रयोजन है ? ॥ ६५ ॥

चारों अनुयोगों के कथन का सार यह है कि–शुद्ध निर्मल अभेद द्रव्य स्वभावके आश्रयसे धर्मका प्रारम्भ, वृद्धि और पूर्णता होती है ।

★

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रकरण सातवाँ

साततत्त्व—नवपदार्थ अधिकार

प्रश्न (१)–तत्त्व का क्या अर्थ ?

उत्तर—१–" 'तत्' शब्द है वह 'यत्' शब्द की अपेक्षा सहित है; इसलिये जिसका प्रकरण हो उसे 'तत्' कहते हैं और जिसका जो भाव अर्थात् स्वरूप है उसे 'तत्त्व' जानना; क्योंकि–'तस्य भावस्तत्वम्'–ऐसा तत्व शब्दका समास होता है।"

–(मोक्षमार्ग प्रकाशक देहलीवाली आवृत्ति, पृष्ठ ४६५)

२—" 'तत्व' शब्दका अर्थ 'तत्‌रूपता उसरूपता' होता है। प्रत्येक वस्तु को–तत्व को स्वरूपसे तत्‌रूपता है और पररूप से अतत्‌रूपता है। जीव वस्तु होने से उसे अपने स्वरूपसे तत्-रूपता है और परके स्वरूपसे अतत्‌रूपता है।

जीव चैतन्यस्वरूप होने से वह ज्ञाता है और अन्य सर्व वस्तुएँ ज्ञेय हैं; इसलिये जीव अन्य सर्व पदार्थों से बिल्कुल भिन्न है। जीव अपने से तत् होने के कारण उसका ज्ञान उसे अपने से होता है; जीव परसे अतत् होने के कारण उसे परसे ज्ञान नहीं हो सकता......जीव को यदि परसे ज्ञान हो तो जीव और पर एक तत्व हो जायें, किन्तु ऐसा नहीं हो सकता।"

(मोक्षशास्त्र–अ० १, सू० २ की टीका–
प्रकाशक स्वा० मंदिर ट्रस्ट, सोनगढ़)

प्रश्न (२)–तत्व कितने हैं ?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उत्तर—तत्व सात हैं—१–जीव, २–अजीव, ३–आस्रव, ४–बंध, ५–संवर, ६–निर्जरा और ७–मोक्ष ।

प्रश्न (३)–सात तत्वों का स्वरूप क्या है ?

उत्तर—१–जीव–जीव अर्थात् आत्मा । वह सदैव ज्ञाता स्वरूप, परसे भिन्न और त्रिकाल स्थायी (रहने वाला) है ।

२—अजीव–जिसमें चेतना–ज्ञातृत्व नहीं है; ऐसे द्रव्य पाँच हैं । उनमें धर्म, अधर्म, आकाश और काल–यह चार अरूपी हैं और पुद्गल रूपी–स्पर्श, रस, गंध और वर्ण सहित है ।

३—आस्रव–जीव में जो विकारी शुभाशुभभावरूप अरूपी अवस्था होती है वह **भावास्रव** है और उस समय नवीन कर्म योग्य रजकणों का स्वयं (स्वतः) आना (आत्मा के साथ एक क्षेत्र में आना) वह **द्रव्यासूव** है, (उसमें जीव की अशुद्ध पर्याय निमित्तमात्र है ।)

पुण्य और पाप दोनों आसूव और बंध के भेद हैं ।

पुण्य–दया, दान, भक्ति, पूजा, व्रतादिके शुभभाव जीवको होते हैं वे अरूपी अशुद्धभाव हैं; वे भाव पुण्य हैं । उससमय सातावेदनीय शुभनाम आदि कर्मयोग्य परमाणुओंका समूह स्वयं (स्वतः) एक क्षेत्रावगाह संबंधरूपसे जीवके साथ बँधता है वह द्रव्यपुण्य है, (उसमें जीव का अशुद्धभाव निमित्तमात्र है ।)

पाप—मिथ्यात्व, हिंसा, असत्य, चोरी, अव्रतादि के अशुभभाव पाप हैं । उस समय ज्ञानावरणीय, मोहनीय, असातावेदनीय, आदि कर्मयोग्य पुद्गल स्वयं स्वतः जीव के साथ बँधते हैं वह द्रव्यपाप है, (उसमें जीवका अशुभभाव निमित्तमात्र है ।)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

[परमार्थतः (वास्तवमें) पुण्य–पाप (–शुभाशुभभाव) आत्माको अहितकर हैं, आत्माकी क्षणिक अशुद्ध अवस्था हैं। सम्यग्दृष्टि को पुण्यभावसे आंशिक संवर–निर्जरा होते हैं यह मान्यता मिथ्या है। द्रव्य पुण्य–पाप आत्मा का हित–अहित नहीं कर सकते।]

(देखो, राजमलजीकृत समयसार कलश–टीका पृ० ११२ कलश ११०)

४–बंध—आत्माके अज्ञान, राग–द्वेष, पुण्य–पापरूप विभाग में रुक जाना (अटक जाना) वह **भावबंध** है, और उस समय कर्मयोग्य पुद्गलोंका स्वयं स्वतः जीवके साथ एक क्षेत्रावगाहरूपसे बँधना वह **द्रव्यबंध** है उसमें जीवका अशुद्ध भाव निमित्तमात्र है।)

५–संवर—पुण्य–पापरूप अशुद्धभाव को (आस्रवको) आत्माके शुद्धभाव द्वारा रोकना वह **भाव संवर** है और तदनुसार कर्मों का आना स्वयं स्वतः रुक जाये वह **द्रव्य संवर** है।

६–निर्जरा—अखण्डानन्द शुद्ध आत्मस्वभावलक्ष के बल से आंशिक शुद्धि की वृद्धि और अशुद्ध (शुभाशुभ इच्छारूप) अवस्था की आंशिक हानि करना वह **भाव निर्जरा** है; और उसका निमित्त पाकर जड़ कर्म का अंशतः खिर जाना वह **द्रव्य निर्जरा**

७–मोक्ष—अशुद्ध अवस्थाका सर्वथा–सम्पूर्ण नाश होकर आत्मा की पूर्ण शुद्ध पर्यायका प्रगट होना वह **भाव मोक्ष** है, और उस समय अपनी योग्यता से द्रव्यकर्मों का आत्म प्रदेशों से

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अत्यन्त अभाव होना वह **द्रव्यमोक्ष** है।

(१) "सात तत्वों में प्रथम दो तत्व 'जीव' और 'अजीव' –यह द्रव्य हैं और अन्य पाँच तत्व उनकी (जीव और अजीवकी) संयोगी और वियोगी पर्यायें (विशेष अवस्थाएँ) हैं। आस्रव और बंध संयोगी पर्याएँ हैं, तथा संवर, निर्जरा और मोक्ष वे जीव–अजीवकी वियोगी पर्यायें हैं।

जीव और अजीव तत्व **सामान्य हैं** और अन्य पाँचतत्व पर्यायें होने से **विशेष** भी कहे जाते हैं।

(२) "जिसकी दशा को अशुद्ध में से शुद्ध करना है उसका नाम तो अवश्य ही प्रथम बतलाना चाहिये, इसलिये **'जीव'** तत्व प्रथम कहा; फिर जिस ओर के लक्ष से अशुद्धता अर्थात् विकार होता है उसका नाम आना आवश्यक है, इसलिये **'अजीव'** तत्व कहा। अशुद्धदशा में कारण–कार्य का ज्ञान करने के लिये **'आस्रव'** और **'बंध'** तत्व कहे हैं। इनके पश्चात् मुक्ति का कारण कहना चाहिये; और मुक्ति का कारण वही हो सकता है जो बंध और बंध के कारण से विपरीत–प्रकार का हो; इसलिये आस्रवका निरोध हो वह **'संवर'** तत्व कहा। अशुद्धता–विकार निकल जाने के कार्य को **'निर्जरा'** तत्व कहा और जीव अत्यंत शुद्ध हो जाये वह दशा **'मोक्ष'** तत्व है.......

[मोक्षशास्त्र प्रकाशक स्वा० मं० सो० आवृत्ति अ० १, सूत्र ४ की टीका।]

प्रश्न (४)–"यदि जीव और अजीव–यह दोनों द्रव्य एकान्तरूप से (सर्वथा) परिणामी ही हों तो (१) संयोग पर्यायरूप एक ही

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पदार्थ सिद्ध होता है, और (२) यदि वे सर्वथा अपरिणामी हों तो जीव-अजीव द्रव्यरूप दो ही पदार्थ सिद्ध होते हैं:—यदि ऐसा है तो आस्रवादि सात तत्व किसप्रकार सिद्ध होते हैं ?"

उत्तर—"......जीव और अजीव द्रव्य 'कथंचित् परिणामी' होने से शेष पाँच तत्वों का कथन न्याययुक्त सिद्ध होता है।

'कथंचित् परिणामीपना' का अर्थ यह है कि:—

जिसप्रकार स्फटिकमणि यद्यपि वह स्वभाव से निर्मल है तथापि जासुद पुष्प आदि के समीप (अपनी योग्यता के कारण) पर्यायान्तरपरिणति ग्रहण करता है, पर्याय में स्फटिकमणि यद्यपि उपाधि का ग्रहण करता है, तथापि निश्चय से अपना जो निर्मल स्वभाव है उसे वह नहीं छोड़ता; उसीप्रकार जीव का स्वभाव भी शुद्ध द्रव्यार्थिकनय से तो सहज शुद्ध चिदानन्द एकस्वरूप है, परन्तु स्वयं **अनादिकर्मबंधरूप पर्याय के वश होने से** वह रागादि **परद्रव्य उपाधि पर्याय को** ग्रहण करता है। पर्याय में यद्यपि जीव परपर्यायरूपसे (परद्रव्य के लक्ष से होने वाली अशुद्ध पर्यायरूप से) परिणमित होता है तथापि निश्चयनय से शुद्ध स्वरूप को नहीं छोड़ता। पुद्गल द्रव्य का भी ऐसा ही होता है। इसप्रकार जीव-अजीव का परस्पर अपेक्षा सहित परिणमन होना ही "कथंचित् परिणामीपना" शब्द का अर्थ है।"

"पूर्वोक्त जीव और अजीव-दो द्रव्यों को इन पाँच तत्वों में मिलाने से कुल सात तत्व होते हैं, और उनमें पुण्य-पाप को (आस्रव में से) पृथक् गिना जाये तो नव पदार्थ होते हैं। पुण्य और पाप नामके दो पदार्थों का अंतर्भाव (समावेश) अभेदनय से आस्रव-बंध पदार्थमें किया जाये तब सात तत्व कहे जाते हैं।"

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

"कथंचित् परिणामपना" सिद्ध होने से जीव और पुद्गल के संयोगकी परिणति (परिणाम) से रचितशेष आस्रवादि पाँच-तत्व सिद्ध होते हैं। जीवमें आस्रवादि पाँच तत्वों के परिणमन के समय पुद्गल कर्मरूप निमित्त का सद्भाव या अभाव होता है और पुद्गल में आस्रवादि पाँचतत्वों के परिणमन में जीव के भाव रूप निमित्तका सद्भाव या अभाव होता है। इसी से सात तत्वों को "जीव और पुद्गल के संयोग की परिणति से रचित" कहा जाता है। परन्तु जीव और पुद्गल की सम्मिलित परिणति होकर शेष पाँच तत्व होते हैं ऐसा नहीं समझना चाहिये।"

(मोक्षशास्त्र प्र० स्वा० मं. सो. अ० ६ की भूमिका)

प्रश्न (५)–यद्यपि जीव–अजीव का कथंचित् परिणामीपना मानने से भेदप्रधान पर्यायार्थिकनयकी अपेक्षा से सात तत्व सिद्ध हो गये, तथापि उनसे जीवका क्या प्रयोजन सिद्ध हुआ? क्योंकि जिस-प्रकार पहले अभेदनय से पुण्य और पाप–इन दो पदार्थों का सात तत्वों में अन्तर्भाव किया है, उसी प्रकार विशेष अभेदनय की विवक्षा में आस्रवादि पदार्थों का भीजीव और अजीव इन दो ही पदार्थों में अन्तर्भाव कर लेने से वे दो ही पदार्थ सिद्ध हो जायेंगे।"

उत्तर—"....कौन-से तत्त्व हेय हैं और कौनसे उपादेय हैं उसका परि-ज्ञान हो–इस प्रयोजनसे आस्रवादि तत्वों का निरूपण किया जाता है।

प्रश्न (६)–उपादेय तत्व कौन-से हैं?

उत्तर—"अक्षय अनंत सुख वह उपादेय है और उसका कारण मोक्ष है। मोक्षका कारण संवर और निर्जरा हैं; उनका कारण विशुद्ध ज्ञान–दर्शन स्वभावी निजआत्मस्वरूप का सम्यक्श्रद्धान, ज्ञान तथा आचरण लक्षण स्वरूप निश्चयरत्नत्रय है। उस निश्चय

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रत्नत्रय को साधने की इच्छा रखने वाले जीव को व्यवहार रत्नत्रय क्या है वह समझकर परद्रव्य और राग से अपना लक्ष उठाकर निज आत्माके त्रिकाली स्वरूपकी ओर लक्ष करना चाहिये। ऐसा करने से निश्चय सम्यग्दर्शन प्रगट होता है और उसके बल से संवर, निर्जरा तथा मोक्ष प्रगट होता है; इसलिये यह तीन तत्व उपादेय हैं।

प्रश्न (७)–हेय तत्व कौन-से हैं ?

उत्तर—"....आकुलता को उत्पन्न करने वाले ऐसे निगोद–नरकादि गतियों के दुःख तथा इन्द्रियों द्वारा उत्पन्न हुआ कल्पित सुख वह हेय (छोड़ने योग्य) है; उसका कारण संसार है। उस संसारका कारण आस्रव और बंध–यह दो तत्व हैं; पुण्य–पाप दोनों बंध तत्व हैं; उस आस्रव तथा बंध के कारण पूर्वकथित् निश्चय और व्यवहार रत्नत्रय से विपरीत लक्षण के धारक ऐसे मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान और मिथ्याचारित्र यह तीन हैं; इसलिये आस्रव और बंध–यह दो तत्व हेय हैं।

इस प्रकार हेय तथा उपादेय तत्वों के निरूपणसे सात तत्वों और नव पदार्थों का प्रयोजन सिद्ध होता है।"

(मोक्षशास्त्र अ० ६ भूमिका पृ० ४६९)

प्रश्न (८)–मिथ्यादृष्टि जीव सात तत्वों सम्बन्धी कैसी–कैसी भूलें करता है ?

उत्तर—१–**जीव तत्त्व सम्बन्धी भूलः—**

जीव तो त्रिकाल ज्ञान स्वरूप है; इसे वह **अज्ञानवश** नहीं जानता और जो शरीर है सो मैं हूँ, शरीरका कार्य मैं कर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सकता हूँ—ऐसा मानता है; शरीर स्वस्थ हो तो मुझे लाभ हो, बाह्य अनुकूल संयोगोंसे मैं सुखी और बाह्य प्रतिकूल संयोगोंसे दुःखी, मैं निर्धन, मैं धनवान, मैं बलवान, मैं निर्बल, मैं मनुष्य, मैं कुरूप, मैं सुन्दर—ऐसा मानता है; शरीराश्रित उपदेश और उपवासादि क्रियाओं में निजत्व (अपनापन) मानता है।

इसप्रकार अज्ञानी जीव परको स्व स्वरूप मानकर अपने सतत्वका (जीवतत्वका) इन्कार करता है; इसलिये वह जीव-तत्व सम्बन्धी भूल करता है।

२—अजीव तत्त्व सम्बन्धी भूल—

मिथ्या अभिप्रायवश जीव ऐसा मानता है कि शरीर उत्पन्न होने से मेरा जन्म हुआ, शरीरका नाश होने से मैं मर जाऊँगा; धन, शरीर इत्यादि जड़ पदार्थों में परिवर्तन होने से अपने में इष्ट—अनिष्ट परिवर्तन मानना; शरीरकी उष्ण अवस्था होने पर मुझे बुखार आया; भूख—प्यास आदिरूप अवस्था होने पर मुझे भूख, प्यास लग रहे हैं—ऐसा मानना; शरीर कट जाने पर मैं कट गया—इत्यादिरूप अजीवकी अवस्था को अज्ञानी जीव अपनी अवस्था मानता है,—यह उसकी अजीवतत्व सम्बन्धी भूल है, क्योंकि वह अजीवको जीव मानता है। इसमें अजीव को स्वतत्व (जीवतत्व) मानकर वह अजीव तत्व का अस्वीकार करता है।

३—आस्रव तत्त्व सम्बन्धी भूल----

मिथ्यात्व. राग, द्वेष, शुभाशुभभाव आस्रव हैं। वे भाव आत्मा को प्रगटरूप से दुःख देने वाले हैं; परन्तु मिथ्यादृष्टि जीव

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उन्हें हितरूप मानकर उनका निरंतर सेवन करता है। यह उसकी आस्रव तत्व सम्बन्धी भूल है।

४--बंधतत्त्व सम्बन्धी भूल--

जैसी सोने की बेड़ी वैसी ही लोहे की बेड़ी–दोनों बंधन-कारक हैं; उसी प्रकार पुण्य और पाप दोनों जीवको बंधनकर्ता हैं; किन्तु मिथ्यादृष्टि जीव ऐसा न मानकर पुण्यको अच्छा–हितकारी मानता है। तत्व दृष्टि से तो पुण्य–पाप दोनों अहित-कर ही हैं, परन्तु अज्ञानी वैसा नहीं मानता;–यह उसकी बंध-तत्व सम्बन्धी भूल है।

५—संवरतत्त्व सम्बन्धी भूल—

निश्चय सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्र जीवको हितकारी हैं, किन्तु मिथ्यादृष्टि जीव उन्हें कष्टदायक मानता है।–यह उसकी संवरतत्व सम्बन्धी भूल है।

६–निर्जरातत्त्व सम्बन्धी भूलः—

आत्मा में एकाग्र होकर शुभ और अशुभ दोनों प्रकार की इच्छा रोकने से निजात्माकी शुद्धिका प्रतपन होना वह तप है, और उस तप से निर्जरा होती है। ऐसा तप सुखदायक है, परन्तु अज्ञानी उसे क्लेशदायक मानते हैं और आत्माकी ज्ञानादि अनंत शक्तियों को भूलकर पाँच इन्द्रियों के विषयों में सुख मानकर उसमें प्रीति करते हैं।—यह निर्जरा तत्वसम्बन्धी भूल है। वालतप से मोक्षमार्ग के कारणरूप निर्जरा मानना भी भूल है।

७–मोक्षतत्त्व सम्बन्धी भूलः–

आत्माकी परिपूर्ण शुद्धदशा का प्रगट होना वह मोक्ष है;

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उसमें आकुलता का अभाव है–पूर्ण स्वाधीन निराकुलता वह सुख है; परन्तु अज्ञानी ऐसा न मानकर शरीर में, राग–रंग में ही सुख मानते हैं। मोक्ष में देह, इन्द्रिय, खान–पान, मित्रादि कुछ भी नहीं होता, इसलिये अज्ञानी अतीन्द्रिय मोक्ष सुख को नहीं मानता।–यह उसकी मोक्षतत्त्व सम्बन्धी भूल है।

इसप्रकार सात तत्वों सम्बन्धी भूल के कारण अज्ञानी जीव अनंतकाल से संसार में भटक रहा है।

प्रश्न (९)–अज्ञानी का जीवाजीव तत्वका श्रद्धान क्यों अयथार्थ है?

उत्तर—"जैन शास्त्रोंमें कहे हुए जीव के त्रस–स्थावर आदि भेदों को, गुणस्थान–मार्गणा आदि भेदों को, जीव–पुद्गलादि के भेदों को तथा वर्णादि भेदों को तो जीव जानता है किन्तु अध्यात्म शास्त्रों में भेदविज्ञानके कारणभूत और वीतरागदशा होने के कारणभूतवस्तु का जैसा निरूपण किया है वैसा जो नहीं जानता उसे जीव अजीवतत्त्व की यथार्थ श्रद्धा नहीं है.... जिस प्रकार अन्य मिथ्यादृष्टि निर्धार के बिना पर्याय बुद्धि से जानपनामें या वर्णादिमें अहंबुद्धि रखते हैं, उसीप्रकार यह भी आत्माश्रित ज्ञानादि में तथा शरीराश्रित उपदेश–उपवासादि क्रियाओं में अपनत्व मानता है। पुनश्च, कभी–कभी शास्त्रानुसार सच्ची बात भी बतलाता है, किन्तु वहाँ अंतरंग निर्धाररूप श्रद्धान नहीं है, इसलिये जिसप्रकार नशेबाज मनुष्य माता को माता भी कहे तथापि वह सयाना नहीं है, उसीप्रकार इसे भी सम्यग्दर्शनवाला नहीं कहते।

पुनश्च, जिसप्रकार कोई दूसरेको दूसरेसे भिन्न बतलाता हो

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उसी प्रकार यह आत्मा और शरीरकी भिन्नता का प्ररूपण करता है; परन्तु मैं इन शरीरादि से भिन्न हूँ—ऐसा भाव भासित नहीं होता। और पर्याय में जीव–पुद्गल के परस्पर निमित्त से अनेक क्रियाएँ होती हैं उन सब को दो द्रव्यों के मिलाप से उत्पन्न मानता है, परन्तु यह जीव की क्रिया है, इसमें पुद्गल निमित्त है; तथा यह पुद्गलकी क्रिया है, इसमें जीव निमित्त है;—इस प्रकार भिन्न–भिन्न भाव भासित नहीं होता।—इत्यादि भाव भासित हुए बिना उसे जीव–अजीव का सच्चा श्रद्धानी नहीं कहा जा सकता; क्योंकि जीव–अजीव को जानने का प्रयोजन तो यही था, जो इसे नहीं हुआ।

(मोक्षमार्ग प्रकाशक देहली वाली आवृति पृष्ठ ३३०–३१)

प्रश्न (१०)–अज्ञानी को आस्रव तत्व सम्बन्धी कैसी श्रद्धा होती है ?

उत्तर—"…..उस आस्रवतत्व में जो हिंसादिरूप पापास्रव है उसे तो हेय जानता है तथा अहिंसारूप पुण्यास्रव है उसे उपादेय मानता है; चूँकि यह दोनों कर्मबंध के ही कारण हैं; इसलिये उनमें उपादेयपना मानना ही मिथ्यादर्शन है।……..

हिंसा में मारने की बुद्धि होती है, किन्तु जीवकी आयु पूरी हुए बिना वह नहीं मरता; और अपनी द्वेषपरिणति से स्वयं ही पापबंध करता है, तथा अहिंसा में रक्षा करनेकी बुद्धि होती है, किन्तु उनके आयु–अवशेष के बिना नहीं जीता, मात्र अपनी प्रशस्त राग परिणति से स्वयं ही पुण्य बंध करता है।—इसप्रकार ये दोनों हेय हैं, और जहाँ वीतराग होकर ज्ञाता दृष्टारूप प्रवर्तन करे वहाँ निर्बन्धता है, इसलिये वह उपादेय है। लेकिन ऐसी दशा न हो तब तक प्रशस्त राग रूप प्रवर्तन करो, किन्तु

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्रद्धान तो ऐसा रखो कि यह भी बंध का कारण है–हेय है; यदि श्रद्धान में उसे मोक्षमार्ग माने तो वह मिथ्यादृष्टि है।

पुनश्च, राग-द्वेष-मोहरूप जो आस्रवभाव है उसका नाश करने की तो (उसे) चिन्ता नहीं है और बाह्य क्रिया तथा बाह्य निमित्तों को मिटाने का उपाय रखता है, किन्तु उनके मिटाने से कहीं आस्रव नहीं मिटते.......अंतरंग अभिप्राय में मिथ्यात्वादि-रूप रागादिभाव हैं वही आस्रव है। उसे नहीं पहिचानता इस-लिये आस्रवतत्व का भी उसे सच्चा श्रद्धान नहीं है।"

(मोक्षमार्ग प्रकाशक (देहलीवाला-) पृष्ठ ३३३)

प्रश्न (११)–सात तत्वोंकी यथार्थ श्रद्धा में देव–गुरु–धर्म की श्रद्धा किस प्रकार आ जाती है ?

उत्तर—१–मोक्षतत्व सर्वज्ञ–वीतराग स्वभाव है; उसके धारक श्री अरिहंत–सिद्ध हैं; वे ही निर्दोष देव हैं। इसलिये जिसे मोक्षतत्व की श्रद्धा है उसी को सच्चे देवकी श्रद्धा है।

२–संवर—निर्जरा निश्चय रत्नत्रय स्वभाव है, उसके धारक भावलिंगी आचार्य, उपाध्याय और साधु हैं वे ही निर्ग्रंथ –दिगम्बर गुरु हैं इसलिये जिसे संवर–निर्जराकी सच्ची श्रद्धा है उसे सच्चे गुरु की श्रद्धा है।

३—जीवतत्वका स्वभाव रागादि घात रहित शुद्ध चैतन्य प्राणमय है। उसके स्वभाव सहित अहिंसा धर्म है; इसलिये जिसे शुद्ध जीवकी श्रद्धा है उसे (अपने आत्मा के) अहिंसारूप धर्म की श्रद्धा है।

प्रश्न (१२)–देव, गुरु और धर्म का क्या स्वरूप है ?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उत्तर—श्री अरिहंत और सिद्ध परमेष्ठी देव हैं और भावलिंगी दिगम्बर मुनि–आचार्य, उपाध्याय तथा साधु वे गुरु हैं।

श्री कुन्दकुन्दाचार्यकृत **नियमसार** में देव–गुरु का स्वरूप निम्नानुसार कहा है:—

१—श्री अरिहंत का स्वरूप:—

"घनघाति कर्म रहित, केवल ज्ञानादि परम गुणों सहित तथा चौंतीस अतिशय संयुक्त–ऐसे अरिहंत होते हैं।"

(गाथा ७१)

बाह्य–आभ्यन्तर सर्व मिलकर श्री अरिहंतदेवके ४६ गुण होते हैं। श्री अरिहंत और सिद्ध भगवान् को दर्शनोपयोग और ज्ञानोपयोग एक साथ होते हैं, क्रमशः नहीं होते।]

२— श्री सिद्ध का स्वरूप:—

"आठ कर्मों के बंधनको जिन्होंने नष्ट किया है ऐसे, अष्ट महागुणों सहित, परम, लोकाग्र में स्थित और नित्य–ऐसे वे सिद्ध होते हैं।"

(गाथा ७२)

[सिद्ध भगवान् में व्यवहारसे आठ गुण और निश्चय से अनंत गुण हैं।]

३—श्री आचार्य का स्वरूप:—

"पंचाचारों से परिपूर्ण, पंचेन्द्रियरूपी हाथी के मद को चूर करने वाले, धीर और गुण–गम्भीर–ऐसे आचार्य होते हैं।"

(गाथा ७३)

[आचार्य के ३६ गुण होते हैं।]

४—श्री उपाध्याय का स्वरूप:—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

"रत्नत्रयसे संयुक्त, जिनकथित पदार्थों के शूरवीर उपदेशक और निःकांक्षभाव सहित—ऐसे उपाध्याय होते हैं।"

(गाथा ७४)

[उपाध्याय के २५ गुण होते हैं। वे मुनियों में अध्यापक होते हैं।]

५—श्री साधु का स्वरूपः—

"व्यापारसे विमुक्त, चतुर्विध (चार प्रकार की) आराधना में सदैव रक्त (लीन), निर्ग्रन्थ और निर्मोह ऐसे साधु होते हैं।"

(गाथा ७५)

[साधु के २८ मूल गुण होते हैं।]

आचार्य, उपाध्याय और सर्व साधु का सामान्य स्वरूप

जो निश्चय सम्यग्दर्शन सहित हैं, विरागी हैं, समस्त परिग्रहके त्यागी हैं; जिन्होंने शुद्धोपयोगरूप मुनिधर्म अंगीकार किया है और जो अंतरंग में उस शुद्धोपयोग द्वारा अपने आत्माका अनुभव करते हैं, परद्रव्य में अहं बुद्धि नहीं करते, अपने ज्ञानादि स्वभाव को ही अपना मानते हैं, परभावों में ममत्व नहीं करते, किसी को इष्ट—अनिष्ट मानकर उसमें राग—द्वेष नहीं करते; हिंसादिरूप अशुभोपयोगका तो जिन्होंने अस्तित्व ही मिटा दिया है, जो अनेक बार सातवें गुणस्थान के निर्विकल्प आनंद में लीन होते हैं; जब वे छट्ठे गुणस्थान में आते हैं तब उन्हें २८ मूलगुणों का अखण्ड पालन करने का शुभ विकल्प आता है;—ऐसे ही जैन मुनि (गुरु) होते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

६—धर्मका स्वरूपः—

निज आत्माकी अहिंसाको धर्म कहते हैं।

प्रश्न (१३)–श्री अरिहंत के ४६ गुण किस प्रकार हैं ?

उत्तर—उनके ४ आभ्यन्तर और ४२ बाह्य गुण–इस प्रकार कुल ४६ गुण होते हैं।

प्रश्न (१४)–चार आभ्यन्तर गुण कौनसे हैं ?

उत्तर—अनंतदर्शन, अनंतज्ञान, अनंतसुख और अनंतवीर्य यह चार आभ्यन्तर गुण हैं।

प्रश्न (१५)–४२ बाह्य गुण कौन–कौन से हैं ?

उत्तर—३४ अतिशय और ८ प्रातिहार्य–यह ४२ बाह्य गुण हैं।

प्रश्न (१६)–३४ अतिशय कौन-से हैं ?

उत्तर—(अ) दस अतिशय जन्म से होते हैं—

१–मल–मूत्रका अभाव, २–प्रस्वेदका अभाव, ३ –श्वेत रक्त, ४–समचतुस्र संथान, ५–वज्र ऋषभ नाराच संहनन, ६--अद्भुत रूप, ७--अतिसुगंधित शरीर, ८--१००८ उत्तम लक्षण, ९--अतुल बल, १०--प्रियवचन।

(ब) दस अतिशय केवलज्ञान उत्पन्न होने पर होते हैं

१--उपसर्गका अभाव, २--अदयाका अभाव, ३--शरीर की छाया नहीं पड़ती, ४--चार मुख दिखलाई देते हैं, ५--सर्व विद्याओं का स्वामित्व, ६--नेत्रों की पलकें नहीं झपकती, ७--सौ योजन तक सुभिक्षता (सुकाल) रहती है, ८--आकाश गमन (धरती से बीस हजार हाथ ऊपर), ९--कवलाहारका अभाव, १०--नख--केश नहीं बढ़ते।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(क) देवकृत चौदह अतिशय

१–सकल अर्द्धमागधी भाषा, २–सर्व जीवों में परस्पर मैत्रीभाव, ३–सर्व ऋतुओं के फल–फूल एक ही समय फलना, ४–दर्पण–समान भूमि, ५–कंटकरहित भूमि, ६–मंद सुगन्ध पवन, ७–सर्व को आनन्द, ८–गंधोदक वृष्टि, ९–चरणों के नीचे कमल रचना, १०–सर्व धान्यों की उत्पत्ति होना, ११–दसों दिशाएँ निर्मल होना, १२–आकाशमें देवों के आह्वान शब्द तथा जय-जय ध्वनि, १३–धर्म चक्रका आगे चलना, १४–अष्ट मंगल द्रव्यों का आगे चलना।

[अष्ट मंगलद्रव्य—१–छत्र,२–ध्वजा, ३–दर्पण, ४–कलश, ५–चँवर, ६–झारी, ७–पंखा, ८–ठौना–(सप्रतिष्ठ)]

(ङ) आठ प्रतिहार्य:---(विशेष महिमाबोधक चिह्न)

१–अशोकवृक्ष, पुष्पवृष्टि, दिव्यध्वनि, ४–चँवर, ५–सिंहासन, ६–भामंडल, ७–दुंदुभि, ८–तीन छत्र।

प्रश्न (१७)–श्री सिद्ध के आठ गुण कौन से हैं ?

उत्तर—उनके निम्नोक्त आठ गुण होते हैं:—

१–सम्यक्त्व, २–दर्शन, ३–ज्ञान, ४–वीर्य, ५–अगुरुलघुत्व, ६–अवगाहनत्व, ७–सूक्ष्मत्व, ८–अव्याबाधत्व।

प्रश्न (१८)–आचार्य के ३६ गुण कौन–से हैं ?

उत्तर—उनके निम्नानुसार ३६ मूल गुण होते हैं:—

(१) उत्तमक्षमादि (१०) **धर्म**, (२) **बारह प्रकारके तप**, (३) **पाँच आचार** (दर्शनाचार, ज्ञानाचार, चारित्राचार, तपाचार और वीर्याचार), (४) **छह आवश्यक** (१–सामायिक, २–वंदना,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

३–चौबीसतीर्थंकर अथवा पंचपरमेष्ठी की स्तुति, ४–प्रतिक्रमण, ५–स्वाध्याय, ६–कायोत्सर्ग) (५) **तीन गुप्ति** (मनोगुप्ति, वचनगुप्ति और कायगुप्ति ।)

प्रश्न (१६)–बारह प्रकार के तप कौन–कौन से हैं ?

उत्तर—छह बाह्यतप और छह आभ्यन्तर तप—इसप्रकार बारह प्रकार के तप हैं।

(१) छह बाह्यतप––१. अनशन (संयमकी वृद्धि के लिये चार प्रकार के आहार का त्याग), २–**अवमौदर्य** (रागभाव दूर करने के लिये भूख से कम भोजन करना), ३–**वृत्तिपरिसंख्यान** (भिक्षा के लिये जाते समय घर, गली आदि का नियम करना), ४–**रसपरित्याग** (इन्द्रियों का दमन करने के लिये घी, दूध आदि रसों का त्याग करना) ५--**विविक्त शय्यासन** (स्वाध्याय, ध्यान आदिकी सिद्धि के लिये एकान्त–पवित्रस्थान में सोना बैठना), ६--**कायक्लेश** (शरीर से ममत्व न रखकर आतापन योगादि धारण करना ।)—यह छह बाह्यतप हैं।

(२-) छह आभ्यन्तर तपः-- १--प्रायश्चित (प्रमाद अथवा अज्ञान से लगे हुए दोषों की शुद्धि करना), २-**विनय** (पूज्य पुरुषों का आदर करना), ३–**वैयावृत्य** (शरीर तथा अन्य वस्तुओं से मुनियों की सेवा करना), ४–स्वाध्याय (ज्ञान की भावना में आलस्य न करना), ५–व्युत्सर्ग (वाह्य एवं आभ्यन्तर परिग्रह का त्याग करना), ६–ध्यान (चित्तकी चंचलता को रोककर उसे किसी एक पदार्थ के चिन्तवन में लगाना ।)—यह छह आभ्यंतर तप हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रश्न (२०)–उपाध्याय के २५ गुण कौन–से हैं ?

उत्तर—वे ११ अंग और १४ पूर्व के पाठी होते हैं तथा निकट रहने वाले भव्य जीवों को पढ़ाते हैं; यही उनके २५ गुण समझना।

प्रश्न (२१)–मुनि (साधु–श्रमण) के २८ मूल गुण कौन से हैं ?

उत्तर—५ महाव्रत—हिंसा, असत्य, चोरी, अब्रह्म और परिग्रह की विरतिरूप पाँच प्रकार।

५ समिति—ईर्या, भाषा, एषणा, आदाननिक्षेपण और प्रतिष्ठापन।

५ इन्द्रियनिरोध—पाँच इन्द्रियों के विषयों में इष्ट–अनिष्टपना न मानना।

६ आवश्यक—सामायिक, बंदना, २४ तीर्थंकर अथवापंचपरमेष्ठी की स्तुति, प्रतिक्रमण, स्वाध्याय और कायोत्सर्ग।

—इनके अतिरिक्त १–केशलोंच २–वस्त्रत्याग (अचेलत्व दिगम्बरत्व), ३–अस्नानता, ४–भूमिशयन, ५–अदन्तधावन (दतौन न करना), ६–खड़े–खड़े आहार लेना, और ७–एक-बार आहार लेना–इसप्रकार कुल २८ मूलगुण हुए।

[आचार्य, उपाध्याय और साधु–यह तीनों निश्चयरत्नत्रय अर्थात् शुद्धोपयोगरूप मुनिधर्मरूप जो आत्मस्वरूप का साधन है उसके द्वारा अपने आत्मा में सदैव तत्पर (सावधान-जागृत) रहते हैं; बाह्य में २८ मूलगुण के धारक होते हैं। उनके पास दयाका उपकरण पींछी, शौचका उपकरण कमंडल और ज्ञानका उपकरण सुशास्त्र होते हैं। वे शास्त्र कथित् ४६ दोषों (३२ अंतराय तथा १४ आहार सम्बन्धी दोष) से रहित शुद्ध आहार ग्रहण करते हैं।–वे ही मोक्षमार्ग के साधक–सच्चे साधु हैं और वे गुरु कहलाते हैं।]

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रश्न (२२) अरिहंत भगवान् किन १८ दोषों से रहित हैं ?

उत्तर—क्षुधा, तृषा, भय, रोष (क्रोध), राग, मोह, चिन्ता, जरा (बुढ़ापा), रोग, मृत्यु, स्वेद (पसीना), खेद, मद, रति, विस्मय, निद्रा, जन्म और उद्वेग–यह १८ दोष अरिहंत भगवान के कभी नहीं होते। (नियमसार गाथा ६)

[दोहा]

जन्म, जरा, तृषा, क्षुधा, विस्मय, अरति, खेद;
रोग, शोक, मद, मोह, भय, निद्रा, चिन्ता स्वेद।
राग, द्वेष, अरु मरणयुत, ये अष्टादश दोष;
नहिं होते अरिहंतके सो छबि लायक मोक्ष।

प्रश्न (२३)–सच्चे शास्त्र (आगम) का क्या स्वरूप है ?

उत्तर—१–"जिनमें अनेकान्तरूप सच्चे जीवादि तत्त्वों का निरूपण है तथा जो सच्चा रत्नत्रयरूप मोक्षमार्ग बतलाते हैं वे सच्चे जैन-शास्त्र हैं।" (-मोक्षमार्ग प्रकाशक पृष्ठ ३२९)

२–"तीर्थंकर परमदेव की वाणी जो पूर्वापर दोषरहित और शुद्ध है उसे आगम (शास्त्र) कहा है।

(नियमसार गाथा ८)

३–"वास्तव में आगम बिना पदार्थों का निश्चय नहीं किया जा सकता; क्योंकि आगम ही जिसे तीनोंकाल (उत्पाद–व्यय–ध्रौव्यरूप) तीन लक्षण वर्तते हैं ऐसे सकल पदार्थसार्थ* के यथातथ ज्ञान द्वारा सुस्थित् अंतरंग से गम्भीर है।"

(श्री प्रवचनसार गाथा २३२ की टीका)

प्रश्न (२४)–सर्वज्ञ का लक्षण क्या है ?

---

* पदार्थ सार्थ=पदार्थ समूह।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उत्तर—श्री समन्तभद्राचार्य कहते हैं कि:—

हे जिनेन्द्र ! तू वक्ताओं में श्रेष्ठ है; चराचर (जंगम तथा स्थावर) जगत् प्रतिक्षण (प्रत्येक समय) उत्पाद–व्यय–ध्रौव्य लक्षण वाला ऐसा यह तेरा वचन सर्वज्ञ का चिह्न है।"

—(श्री बृहत् स्वयंभूस्तोत्र, श्लोक ११४)

प्रश्न (२५)–जैनधर्म क्या है ?

उत्तर—जैनधर्म राग–द्वेष, अज्ञान को जीतनेवाला आत्मस्वभाव है। अज्ञान और अंशत: राग द्वेष का अभाव होनेपर निश्चय सम्यग्दर्शन होने से (चौथे गुणस्थान में) जैनत्व का प्रारम्भ होता है। फिर जितने–जितने अंशमें राग–द्वेषका अभाव हो उतने–उतने अंशमें जैनत्व बढ़ता जाता है और केवलज्ञान होने पर पूर्ण जैनत्व (जैनपना) प्रगट होता है।

★

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi